॥ श्रीहरिः ॥

121

श्रीएकनाथ-चरित्र

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

भूमिका

यह चरित्र एकनाथ महाराजका है। इनका नाम महाराष्ट्रमें अत्यन्त लोकप्रिय है। श्रीज्ञानेश्वरका नाम गम्भीर बना देता है, तुकारामके नाममें लीनता है, रामदासके नामकी धाक है, वैसे ही इनके नाममें सबको प्रसन्न कर देनेकी शक्ति है। कारण इनका चरित्र ऐसा ही है जो पाठक आगे पढ़ेंगे। काशीमें जैसे गंगा बहती हैं, वैसे ही महाराष्ट्रमें, विशेषकर पैठणमें एकनाथकी स्मृतिगंगा बहती है। आज भी महाराष्ट्रमें सर्वत्र एकनाथषष्ठी मनायी जाती है और पैठणमें तो इस दिन सब दिशाओंसे यात्री एकत्र होते और इस स्मृतिगंगामें स्नानकर कृतार्थताका अनुभव करते हैं। प्रतिष्ठान या पैठण किसी समय विद्याका एक प्रधान केन्द्रस्थान था, पर आज पैठणमें और तो कुछ नहीं, पर एकनाथकी दिव्य स्मृति है। पैठणकी विद्या सफल हो गयी जब एकनाथ उत्पन्न हुए। पैठणमें एकनाथ महाराजका स्थान अभीतक है, 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' के न्यायसे उनके वंशधरोंको मिली हुई जागीर भी है, वंशधर भी हैं, एकनाथ महाराजकी स्मृति और उनका कार्य भी है। स्मृतिके उत्सव भी होते हैं।

चरित्र एकनाथ महाराजका है। अवलोकन और लेखन महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध हरिभक्तिपरायण विद्वान् लेखक पं० लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकरका है, इस हिंदी अनुवादकी भाषा केवल मेरी है। अनुवादमें प्रसंगके अनुसार मूलके कुछ ऐसे मराठी अवतरण मैंने छोड़ दिये हैं, जिनके छोड़ देनेसे मेरे विचारमें प्रसंग, रस या हेतुकी कोई हानि नहीं होती। उदाहरणार्थ, 'रुक्मिणी-स्वयंवर'का मूलमें जो विस्तारपूर्वक वर्णन है और जिसका हेतु इसका पारमार्थिक पहलू दिखलाना है, उसे मैंने बहुत संक्षेपमें दिया है। 'भावार्थ-रामायण'के प्रसंगमें भी ऐसा ही किया है। 'एकनाथ भागवत'से बोधवचनोंका जो संग्रह दिया है, वह मानो इसके बदलेमें मूल ग्रन्थमें दिये हुए वचनोंसे बहुत अधिक है। इन दो-एक बातोंको छोड़कर यह सर्वथा श्रीपांगारकरजीकी पुस्तकका ही अनुवाद है।

इस अनुवादकी प्रेरणा अपने सम्मान्य और परम प्रेमास्पद मित्र श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने की। उनका यदि इस ओर ध्यान न होता तो शायद मैं एकनाथ महाराजके इस गुणानुवादसे प्राप्त होनेवाले अप्रत्यक्ष सत्संगसुखसे वंचित ही रहता। मुझे यह अनुवाद करते हुए जो आनन्द मिला वह अमूल्य है। उसका मूल्य यदि कुछ हो सकता है तो वह यही है कि इससे पाठकोंका सात्त्विक मनोरंजन हो और हम सबके लिये एकनाथ महाराजका दृष्टान्त सत्पथका प्रदर्शक हो।

काशी, ज्येष्ठ कृ० १२, सं १९८९ बुधवार — लक्ष्मण नारायण गर्दे

श्रीहरिः

ग्रन्थकारकी प्रस्तावना

श्रीएकनाथ महाराजका यह संक्षिप्त चरित्र मराठी-पाठकोंके सामने मैं आज सादर उपस्थित करता हूँ। नाथ महाराजका विस्तृत चरित्र लिखनेका विचार मैंने अभी स्थगित रखा है। सत्कवि श्रीमोरोपन्तके 'चरित्र और काव्य-विवेचन'का ६०० पृष्ठोंका ग्रन्थ मैं दो वर्ष पहले रसिकोंके सामने रख चुका हूँ। ऐसा ही एकनाथ महाराजका बृहच्चरित्र लिखनेका काम मैंने अपने सिर उठा लिया है और उसके काव्य-विवेचन-सम्बन्धी दो-तीन अध्याय मैं लिख भी चुका हूँ। श्रीज्ञानेश्वर, श्रीनामदेव, श्रीएकनाथ, श्रीतुकाराम और श्रीरामदास इस पंचायतनके साद्यन्त चरित्र विस्तृत परिमाणपर लिखनेका मेरा संकल्प पहलेसे था और अब भी है; तथापि इस विस्तृत परिमाणपर लिखे जानेवाले चरित्रोंके पहले आबाल-वृद्ध, छोटे-बड़े और अमीर-गरीब सबके संग्रह करनेयोग्य बोधप्रद, आनन्ददायक तथा सुबोध भाषामें लिखे हुए संक्षिप्त चरित्र लिखनेके लिये अनेक मित्रोंने मुझसे बहुत कहा और इसीको श्रीहरिकी आज्ञा मानकर मैं इस कार्यमें प्रवृत्त हुआ हूँ।

यह एकनाथ महाराजका चरित्र पहले प्रकाशित हो रहा है और इसके बाद ज्ञानेश्वर महाराज, नामदेव महाराज, तुकाराम महाराज, रामदास स्वामी आदि विख्यात साधु-महात्माओंके चरित्र क्रमसे लिखकर प्रकाशित करनेका विचार है, जिसे सत्यसंकल्पके दाता भगवान् पूर्ण करें। प्रस्तुत चरित्र पाँच सप्ताहमें लिखकर तैयार हुआ, इसीसे यह आशा हुई है। सन्त श्रीहरिके उपासक और जीवोंके परम मित्र होते हैं। उनकी वाक्-सुधा-सरितामें अखण्ड निमज्जन करते और उनके गुण गाते और सुनते हुए आनन्दसे अपने मूल पदको प्राप्त करें, ऐसी प्रीति श्रीहरिने ही उत्पन्न की है और इसका पोषण करनेवाले भी वही हैं। सन्त जीवोंके माता-पिता हैं। ज्ञानेश्वरी, नाथभागवत, अमृतानुभव, दासबोध, नामदेव, तुकारामादिके अभंग और सहस्रों भजनादि ग्रन्थोंके रूपमें सन्त ही अवतीर्ण हुए हैं। सन्तके संगसे मनका मैल धुल जाता है, मन स्थिर होकर हरि-चरणोंमें लीन होता है; विषय बाधक क्या होंगे, उनका स्मरण भी नहीं होता, संसार सारभूत और आनन्ददायक प्रतीत होता है। 'मैं' पन मरता और सर्वात्मभाव जाग उठता है और सब

हरिमय मालूम होता है—अखिल विश्व चिदानन्दसे भर जाता है। सन्त भव-बन्धनसे छुड़ाते और स्वस्वरूपके सुखमय सिंहासनपर बैठाते हैं। सन्तोंकी बानी जब सदा जिह्वापर नाचने लगती है, तब भीतर-बाहर सर्वत्र प्रकाश फैलता है, विचार जागता और अज्ञान अस्त होता है। सत्संग मोक्षका द्वार है। सन्तों और सन्तोंके ग्रन्थोंमें कोई भेद नहीं है। सन्तोंके अपार उपकारोंसे अंशतः उऋण होनेका उत्तम उपाय यही है कि हम उनके उपदेश और चरित्रका प्रचार करें। सत्संगमें, सन्तोंके ग्रन्थोंमें और सन्तोंके चरित्रोंमें हम रँगें और दूसरोंको रँगावें, भक्तिका आनन्द स्वयं चखें और दूसरोंको चखावें और परस्परके सहायक होकर, वक्ता-श्रोता-लेखक-पाठक सब मिलकर हरि-प्रेमानन्द प्राप्त करें और दूसरोंको प्राप्त करावें। सम्पूर्ण विश्व हरिभक्तोंकी प्रेमभरी कथाओंसे गूँज उठे यही चित्तकी लालसा रहती है।

सन्त कवियोंके चरित्र लिखनेवाले लेखकको तीन बातोंका विशेष ध्यान रखना होगा—(१) सबसे पहले परम्परासे चली आयी हुई विचार-पद्धतिको पूर्णरूपसे अपनाकर धर्म-विचारोंका यथार्थ स्वरूप ध्यानमें ले आना होगा। अधिकांश महाराष्ट्रीय सन्त भागवत-धर्मके माननेवाले 'वारकरी' थे। इस वारकरी-सम्प्रदायमें जबतक कोई मिल नहीं जाता, तबतक इस सम्प्रदायका शुद्ध-स्वरूप और परम्परागत अर्थसंगति उसके ध्यानमें नहीं आ सकती। आजकल शिक्षितोंमें पूर्वपरम्पराके विषयमें अनादर और परम्परासे बिछुड़ी हुई विचित्र धर्मकल्पनाएँ खूब फैली हैं। इससे अपना-अपना तर्क चलाकर सन्तोंके ग्रन्थों और उनकी कविताओंका चाहे जैसा अर्थ करनेकी बीमारी-सी फैल गयी है। सन्तोंके ग्रन्थ नवीन विचारसे समझने और समझानेका ये लोग प्रयत्न कर रहे हैं। पर इन स्वतन्त्र विचारवालोंसे उन ग्रन्थोंमें दिखायी देनेवाले विरोध दूर करके अनेक उद्‌गारोंकी एकवाक्यता करना नहीं बन पड़ता। यह काम साम्प्रदायिकोंसे ही बनता है। मैं यह नहीं कहता कि आँखें मूँदकर पूर्वपरम्पराको मान लो और अपनी बुद्धिसे कुछ भी विचार मत करो। तथापि पूर्वपरम्पराको अच्छी तरह समझे बिना केवल अपना तर्क चलाना ठीक नहीं। 'वारकरी-सम्प्रदाय'में रखा ही क्या है? ये लोग करताल बजाना, हरिनाम लेना और नाचना-गाना जानते हैं। 'इसके सिवाय तत्त्वकी इन्हें क्या खबर है?' यह कहकर इन भगवद्भक्तोंका अनादर करके अपने ही तर्कपर आरूढ़ होनेवाले अहंमन्य विद्वान् आजकल अनेक

हैं; तथापि अपने अनुभवसे मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, नाथभागवत, दासबोध, तुकारामादिके सहस्त्रों अभंगोंका पूर्वापर-सम्बन्ध लगाकर उत्तम समाधान करनेवाले मर्मज्ञ साम्प्रदायिकोंमें ही मिलते हैं। तात्पर्य, सन्तोंके ग्रन्थ सम्प्रदायपरम्परासे अच्छी तरह समझे बिना उन ग्रन्थोंके विचारोंकी ठीक पहचान नहीं हो सकती और विचारोंकी पहचान होनेपर भी उन विचारोंके अनुसार अनुष्ठान (आचरण) किये बिना उनका सच्चा मर्म कदापि ध्यानमें नहीं आ सकता। (२) भावके बलसे सन्तोंके रहस्य समझमें आ सकते हैं और ग्रन्थार्थ मालूम हो सकता है। परन्तु चरित्रकारमें वागर्थसौन्दर्य अर्थात् शब्दसौन्दर्य और अर्थसौन्दर्य जाननेयोग्य रसिकता भी होनी चाहिये। कहाँ कौन-सी कल्पना सुन्दर है, कहाँ कौन-सा पदविन्यास समुचित है, कहाँ कौन-सा रस या अलंकार है, यह जानकर तत्तत्स्थानमें उसका चित्त तन्मय हो जाना चाहिये। (३) तीसरी बात यह है कि चरित्रकारमें इतिहासदृष्टि भी होनी चाहिये। स्थल-कालका पूर्वापर-सम्बन्ध उसे जानना होगा। तात्पर्य, चरित्रकार साम्प्रदायिक अर्थात् भावुक, काव्यमर्मज्ञ अर्थात् रसिक और इतिहासज्ञ अर्थात् चिकित्सक होना चाहिये। ऐसा तीनों गुणोंसे युक्त चरित्रकार हो तो वह सन्तोंके चरित्र लिखनेका काम उत्तम रीतिसे कर सकता है। भावुकता, रसिकता और चिकित्सकता—इन तीन गुणोंकी कल्पना महीपतिबाबा, विष्णुशास्त्री, चिपलोणकर और राजवाडे—इन नामोंसे अनायास ही हो सकती है। महीपतिबाबाके चरित्रलेखनमें काल-विपर्यासादि दोष दिखायी देते हैं, पर उनकी प्रेमभरी रसीली वाणी संसारदुःख भुलाकर, रज-तमको दबाकर और सत्त्वगुणका उदय करके भक्तिमार्गपर ला खड़ा कर देती है। राजवाडे विद्वान्, शोधक, उद्योगी, स्वार्थत्यागी और बुद्धिमान् होनेसे विद्वन्मान्य रहेंगे और शास्त्रीय शोधके सम्बन्धमें उनके उपकार सदा स्मरण रहेंगे। पर उनका कर्कश, कठोर और भेदक पद्धति भावुकोंको कभी अच्छी नहीं लग सकती। निबन्ध—मालाकार विष्णुशास्त्री मध्यस्थ रहेंगे; तर्कके लिये न तो वह रसका निषेध करेंगे और न अन्ध-श्रद्धाके लिये चाहे जिस बातपर विश्वास ही करेंगे। महीपतिकी रसिकता, मालाकारकी मार्मिकता और राजवाडेकी चिकित्सकता—इन तीनों गुणोंका समुचित सम्मिश्रण जिस सन्त-चरित्रकारमें हुआ रहेगा वह भावुक, रसिक और पण्डित—तीनों प्रकारके लोगोंके लिये मान्य होगा।

ऐसा पुरुष जब उत्पन्न हो। पर इन तीन गुणोंका अल्पांश भी यदि मेरी सन्त-चरितमालामें दिखायी दे तो मैं यह समझ सकता हूँ कि साहित्यकी दृष्टिसे भी सन्तोंकी कुछ सेवा हुई।

एकनाथ महाराजके इस चरित्रके लिये मुख्य आधार केशवबुवा और महीपतिबुवाके लिखे चरित्र और स्वयं एकनाथ महाराजके ग्रन्थ हैं। महीपतिके आधारपर श्रीसहस्त्रबुद्धने एकनाथ महाराजका एक गद्यात्मक चरित्र लिखा है। इसके बाद केशवबुवाका लिखा हुआ चरित्र प्रकाशित हुआ है। केशवबुवा नाथ-साम्प्रदायी थे और देवगढ़पर ही शाके १६८२ (संवत् १८१७) में उन्होंने यह नाथ-चरित्र लिखा जो ३१ अध्यायोंमें पूर्ण हुआ है। महीपतिने भक्त-विजय (अ० ४५-४६) और भक्त-लीलामृत (अ० १३—२४) में एकनाथ महाराजका चरित्र वर्णित किया है। भक्त-विजयमें संक्षेप है और भक्तलीलामृतमें विस्तार है। भक्त-विजय ग्रन्थ शाके १६८४ (संवत् १८१९) में लिखा गया और भक्त-लीलामृत शाके १६९६ (संवत् १८३१) में सम्पूर्ण हुआ। सम्प्रदायशुद्ध और प्रथम चरित्र केशवबुवाका ही लिखा हुआ है। महीपतिबाबाने सन्त-लीलामृतमें केशवबुवाके ग्रन्थमें दिया हुआ कथाभाग ज्यों-का-त्यों दिया है। केशवकृत नाथ-चरित्र और महीपतिकृत भक्तलीलामृत दोनों सामने रखकर देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि केशवकृत ग्रन्थ सामने रखकर ही महीपतिने वर्णन किया है। महीपतिने यह चरित्र २,३५८ ओवियोंमें लिखा है और केशवकृत ग्रन्थमें २,६४४ ओवियाँ हैं। तात्पर्य, केशवकृत नाथ-चरित्र महीपतिके पहलेका है। इन दो चरित्रोंके आधारपर तथा एकनाथ महाराजकी उक्तियोंको स्थान-स्थानमें प्रमाणके तौरपर उद्धृत करके मैंने यह चरित्र-ग्रन्थ तैयार किया है। दासोपन्त, मुक्तेश्वर, कृष्णदयार्णव, मोरोपन्त आदिसे भी कहीं-कहीं सहारा लिया है और अन्तमें 'स्तुति-सुमनांजलि'में एकनाथ महाराजके पश्चात् जो कवि हुए उनके एकनाथके सम्बन्धमें प्रेमोद्गारोंका संग्रह किया है। इन प्रेमोद्गारोंसे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि महीपति और केशवकृत ग्रन्थोंमें दी हुई कथाएँ सर्वत्र कितनी परिचित हो गयी थीं। इस ग्रन्थमें स्थान-स्थानपर एकनाथ महाराजके ग्रन्थोंमेंसे उनके अनेक वचन उद्धृत किये हैं और जहाँ हो सका है। वहाँ एकनाथ महाराजका मनोभाव उन्हींके शब्दोंसे प्रकट कराया है। एकनाथ महाराजसे ही उनका अपना चरित्र कहलवाया है और

चरित्र तथा ग्रन्थ दोनोंका मेल दिखलाया है। यही इस ग्रन्थकी विशेषता है। पहले अध्यायमें नाथके प्रपितामह भानुदासका समग्र चरित्र दिया है और इसमें भी चरित्र और वचनोंका मेल दिखलाया है। दूसरे अध्यायमें नाथके बाल्यकालका वर्णन है, जो बालकोंके लिये बहुत बोधप्रद होगा। तीसरे अध्यायमें नाथके गुरु जनार्दन स्वामीका परिचय देकर नाथकी गुरुसेवा और स्वामीके सगुण साक्षात्कारका वर्णन एकनाथके शब्दोंमें ही कराया है। चौथे अध्यायमें एकनाथ महाराजको जो भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन हुए उसका वर्णन करके, नाथके दत्तमानस-पूजासम्बन्धी अभंग दिये हैं और उसके अनुष्ठानकी पद्धतिका वर्णन किया है। पाँचवेंमें एकनाथकी तीर्थयात्रा और नाथ और चक्रपाणिके परस्परवियोग तथा पुनः मिलनेके प्रेम-रस-परिप्लुत प्रसंगका वर्णन किया है। छठा अध्याय बड़े महत्त्वका है। इसमें नाथका गृहस्थाश्रम, उनकी धर्मपत्नीका सदाचरण, एकनाथकी दिनचर्या, उनकी कथा कहने और कीर्तन करनेकी पद्धति, निन्दक और द्वेषियोंके साथ उनका उदार व्यवहार, उनका समत्व और उनकी उपासना आदि बातोंका विवरण दिया है। सातवें अध्यायमें 'पैठणकी षष्ठी' का इतना महत्त्व क्यों है यह बतलाकर एकनाथकी गुरु-भक्तिका मर्म पुनः विस्तारके साथ बतलाया है। नाथ-चरित्रका सबसे बड़ा गुण गुरु-भक्ति है, इसलिये यहाँ इसका विशेषरूपसे विवेचन किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें प्रसंगानुसार एकनाथ महाराजकी जो कथाएँ वर्णित हुई, उनके अतिरिक्त उनकी जो अन्य महत्त्वपूर्ण कथाएँ महाराष्ट्रमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, उनका संग्रह आठवें अध्यायमें किया है। दो-तीन कथाएँ मैंने ऐसी दी हैं जो केशव और महीपतिके ग्रन्थोंमें नहीं हैं, पर प्रसिद्ध हैं। एकनाथ महाराजको सर्वसाधारण लोगोंने महात्मा कैसे जाना, यह इस अध्यायसे मालूम होता है। एकनाथ महाराजके यहाँ स्वयं भगवान् आकर बारह वर्षतक रहे और एकनाथकी सेवा करते रहे, यह कथा मैंने तत्कालीन सन्तोंके वचनों तथा एकनाथ महाराजके अपने वचनोंके प्रमाण देकर नवें अध्यायमें सप्रमाण दी है। दसवें अध्यायमें यह बतलाया है कि एकनाथ महाराजने पण्ढरी, आलन्दी और काशीकी यात्राएँ कब किस प्रसंगसे और कैसे कीं और फिर इसी अध्यायमें संक्षेपमें उनके ग्रन्थोंका परिचय दिया है। इस अध्यायमें यह बतलाया है कि किस प्रकार काशीके विद्वानोंने पहले एकनाथ महाराजको बड़ा कष्ट दिया और पीछे उनके

सदाचरणसे मुग्ध होकर उनके भागवत ग्रन्थका जय-जयकार किया; इसीमें फिर दासोपन्त और नाथकी भेंट, नाथको ज्ञानेश्वर महाराजके दर्शनोंका लाभ और गावबाका चरित्र वर्णित हुआ है। ग्यारहवें अध्यायमें उनकी सन्ततिका वर्णन कर उनके नाती मुक्तेश्वर और पुत्र हरिपण्डितका परिचय करा दिया है। नाथ और हरिपण्डितमें परस्पर विरोध और फिर मेल कैसे हुआ यह बतलाकर नाथके निर्याणकालका वर्णन किया है और बारहवेंमें नाथकी बड़ाई बड़ोंने कैसे बखानी है यह बतलाया है। ये सब बातें, ये बारह अध्याय पढ़नेसे अच्छी तरहसे मालूम होंगी। गृहस्थाश्रममें रहते हुए एकनाथ महाराजने अपनी ब्रह्मस्थितिको अखण्ड रखा। नाथका-सा मनोहर चरित्र नाथका ही है। इसकी कोई दूसरी उपमा नहीं। श्रीक्षेत्र पैठणमें मैं पंद्रह दिन रहा, इस बीच जो बातें मालूम हुईं, उनसे भी इस चरित्र-लेखनमें मुझे बड़ा लाभ हुआ। मैं इस चरित्र-मालाको उपर्युक्त भावुक, रसिक और चिकित्सक—तीनोंके प्रधान गुणोंका आदर करते हुए तैयार करनेवाला हूँ। कार्यारम्भ हो गया है और हेतु यही है कि हरि, हरिभक्त और हरिनामके विषयमें अपना और अपने पाठकोंका प्रेम और आदर बढ़े और सन्त-चरित्रके दर्पणमें अपना निजरूप हमलोग देख सकें। आत्म-शुद्धिका इसके सिवाय और कोई दूसरा साधन मुझे नहीं दिखायी देता। श्रवण, मनन और निदिध्यासन सबका फल सन्तोंके संगसे प्राप्त होता है। सन्तोंका गुणगान जीवको प्रिय है, उससे मनःशुद्धि होती है, भगवद्भक्ति बढ़ती है और निश्चित ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। तत्त्वज्ञानके ग्रन्थ किसीके लिये कठिन हो सकते हैं, पर सन्त-चरित्रोंका प्रेम ऐसा है कि उनसे किसीका भी जी नहीं ऊबता। सन्तरूपसे जब ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष होता है तब उसकी अनुपम मधुरताका अनुभव होता है। अस्तु, सन्तोंके चरित्र गानेका जो यह हौसला है इसे भगवान् सदा सन्निधिमें रहकर पूरा करें, यही उनके चरणोंमें विनम्र प्रार्थना करके और श्रीएकनाथ महाराजसे यह प्रार्थना करके कि वह अपने चरणोंका प्रेम निरन्तर इस दासको देते रहें, मैं अब श्रीज्ञानेश्वर महाराजके परम पवित्र चरित्रकी ओर चलता हूँ।

पूना, मुमुक्षु-कार्यालय
पौष शुक्ल १, शाके १८३२

सन्तदासानुदास
लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर

हरिभक्तिपरायण श्रीपांगारकरजीकी यह प्रस्तावना इस ग्रन्थके प्रथम संस्करणकी प्रस्तावना है। इस प्रस्तावनासे पाठकोंको यह मालूम होगा कि एकनाथ महाराजका यह चरित्र किस चरित्रमालाका एक पुष्प है, ग्रन्थकारका इसमें क्या उद्देश्य है, सन्त-चरित्र-लेखनके विषयमें ग्रन्थकारके क्या विचार हैं और किस पद्धतिसे यह एकनाथ-चरित्र लिखा गया है। इस प्रस्तावनासे पाठकोंको यह भी मालूम होगा कि मूल ग्रन्थमें एक 'स्तुति-सुमनांजलि' अध्याय है जो इस अनुवाद-ग्रन्थमें छोड़ दिया गया है। इस छूटका कारण यह है कि इस अध्यायमें एकनाथ महाराजके सम्बन्धमें जिन महात्माओंकी कविताओंका संग्रह किया गया है, उनमेंसे एक छोड़ प्रायः सब नाम हिन्दी-पाठकोंके लिये अपरिचित हैं और मराठी पाठकोंको अपने अत्यन्त परिचित और परम वन्द्य एकनाथके इन वैसे ही परिचित स्तोताओंकी स्तुति कविताओंमें जो सहज स्नेह प्राप्त होता है वह अनुवादमें प्राप्त कराना बहुत कठिन है। तथापि यह इच्छा है कि इस अनुवाद-ग्रन्थके दूसरे संस्करणमें इस दृष्टिसे भी प्रयत्न किया जाय। मूल ग्रन्थके प्रथम संस्करणकी प्रस्तावनाका अनुवाद ऊपर दिया गया है और यही ग्रन्थकी प्रस्तावना है जो सब संस्करणोंकी मूल प्रस्तावना है। मूल ग्रन्थके दूसरे संस्करणकी विशेष बात यह है कि 'नाथवाणीका प्रसाद' पहले-पहल इसी संस्करणमें जोड़ा गया अर्थात् पहले संस्करणमें यह अध्याय नहीं था। हिन्दी-पाठकोंको यह प्रसाद पहले संस्करणसे ही प्राप्त होगा। मूल ग्रन्थके तीसरे संस्करणमें 'नाथवाणीका प्रसाद' वाले अध्यायमें भावार्थ-रामायणका अंश कुछ बढ़ाया गया है। हमारा यह हिन्दी-अनुवाद इस तीसरे संस्करणका ही अनुवाद है। अनुवादके विषयमें अनुवादकका वक्तव्य अलग दिया हुआ है।

विनीत

अनुवादक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

नाथवाणीका प्रसाद

ॐ

श्रीएकनाथ-चरित्र

प्रपितामह भानुदास

शुद्ध बीजके ही मधुर और सुन्दर फल होते हैं।

—तुकाराम

श्रीएकनाथ महाराजके परदादा भानुदास आश्वलायन-शाखाके ऋग्वेदी महाराष्ट्र-देशस्थ[1] ब्राह्मण थे। इनका जन्म शाके १३७० (संवत् १५०५) के लगभग पैठण (प्रतिष्ठान) क्षेत्रमें हुआ। शककर्ता शालिवाहन उर्फ सातवाहनकी राजधानी इसी नगरमें थी और तबसे यह स्थान संस्कृत-विद्याका केन्द्रस्थान-सा हो रहा था। इसीसे इसे 'दक्षिणकी काशी' भी कहते थे। चारों वेद, छः शास्त्र और अठारह पुराणोंका जैसा अध्ययन प्रतिष्ठानमें होता था, वैसा दक्षिणमें अन्यत्र कहीं भी नहीं होता था। ज्ञानेश्वर प्रभृति भाई-बहनको[2] शुद्धि-पत्र लानेके लिये तेरहवें शतकमें आलन्दीके ब्राह्मणोंने पैठण ही भेजा था। ऐसी इस पुनीत विद्या-नगरीमें एक

---

१. महाराष्ट्र-ब्राह्मणोंके मुख्यतः तीन भेद माने जाते हैं—कोंकणस्थ या चित्पावन, देशस्थ और कर्‍हाडे। स्थान-भेदसे ही ये भेद हुए हैं, यह इन नामोंसे स्पष्ट है। खान-पान, भाषा-भाव, रीति-रस्म आदिमें परस्पर कोई भेद नहीं है। परन्तु परस्पर विवाह-सम्बन्ध प्रायः नहीं होता, बहुत कम होता है।

२. निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर या ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई चार भाई-बहन थे। इनके पिता विट्ठलपन्त नामक ब्राह्मण इनके जन्मके पूर्व ही काशी जाकर संन्यासी हो गये थे। पीछे काशीके रामानन्दस्वामीके उपदेशसे घर लौट आये, गृहस्थ होकर रहे और इनके ये सन्तान हुए। पिताके एक बार संन्यासी होकर फिर गृहस्थ हो जानेके कारण ये सन्तान जाति-बहिष्कृत माने गये। पर ये चारों भाई-बहन अपूर्व बुद्धिमान्, भक्तिमान् और शास्त्र-मर्यादा मानकर चलनेवाले थे। ज्ञानदेवकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और अलौकिक सामर्थ्य देखकर पैठणके

पवित्र कुलमें भानुदासका जन्म हुआ था। भानुदास[1] दामाजी पन्तके समकालीन थे और शाके १३९०—९७ (संवत् १५२५—३२) का दुर्भिक्ष उन्होंने देखा था। भानुदासके समय पण्ढरपुरके भागवत-धर्मका[2] परिचय पैठणमें बहुत ही थोड़े कुलोंको था। ऐसे ही एक महान् भागवत-धर्मी कुलमें भानुदास उत्पन्न हुए। इनके पूर्वजोंका विशेष हाल नहीं मालूम होता; तथापि बचपनमें ही भानुदासमें जो गुण प्रकट हुए, उनसे उनके उच्च कुल-चरित्रका पता लगता है। जिस कुलको शुद्धाचरणका कुलजात

विद्वत्समाजने नम्रतापूर्वक इन्हें शुद्धि-पत्र दिया। वह ऐतिहासिक शुद्धि-पत्र अत्यन्त महत्त्वका है। ज्ञानेश्वर महाराजके चरित्रमें पाठक उसे देखेंगे।

१. दामाजी पन्त बड़े भगवद्भक्त थे। मुसलमान बादशाहके यहाँ नौकर थे। दुर्गादेवीके भीषण अकालमें इन्होंने दुर्भिक्षपीड़ितोंके लिये शाही अन्नागार खोलकर अन्न लुटवा दिया। इस अपराधके लिये जब इन्हें सजा दी जाने लगी तब कहते हैं कि पण्ढरपुरके विट्ठलभगवान्ने बिठू महारका रूप धारण कर अन्नका मूल्य सरकारी खजानेमें जमा कर दिया।

२. महाराष्ट्रमें कबसे भागवत-धर्म प्रचलित है। इसका कोई निश्चय नहीं किया जा सकता। आजकल जो भागवत-धर्म-सम्प्रदाय वहाँ प्रतिष्ठित है उसके मूल प्रवर्तक पुण्डलीक नामक महात्मा हुए। इन्होंने पण्ढरपुर-क्षेत्रमें महान् तप किया। उसी तपसे प्रसन्न होकर भगवान्ने जिस सगुण रूपमें उन्हें दर्शन दिये उसी रूपमें आज वहाँ श्रीविट्ठलभगवान्की मूर्ति स्थापित है। पुण्डलीकके सामने जब भगवान् प्रकट हुए तब पुण्डलीकने आसनके लिये पास पड़ी हुई एक ईंट दी। उसी ईंटपर वह खड़े हुए। आज भी पण्ढरपुरके मन्दिरमें भगवान् कटिपर हाथ रखे एक ईंटपर खड़े हैं। पण्ढरपुर ही महाराष्ट्रके भागवत-धर्म-सम्प्रदायका प्रधान केन्द्र है। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम आदि महात्माओंने इस भक्तिप्रधान धर्मका आगे बहुत प्रचार किया। इस सम्प्रदायको वारकरी-सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदायके प्रधान उपास्य पण्ढरपुरके श्रीविट्ठल (विष्णु अर्थात् श्रीकृष्ण) भगवान्, मुख्य ग्रन्थ गीता और भागवत (ज्ञानेश्वरी और एकनाथी भागवतके साथ), ध्येय अभेद-भक्ति, साधन नवविधा-भक्ति, महाव्रत एकादशी और प्रधान तीर्थस्थान पण्ढरपुर है।

सहज अभ्यास होता है उसमें उत्पन्न होनेवाले पुरुष प्रायः सदाचार-सम्पन्न ही होते हैं। भानुदास, भानुदासके परपोते एकनाथ और एकनाथके नाती मुक्तेश्वर—इस क्रमसे जिस कुलमें सौ-डेढ़-सौ वर्षके अन्दर तीन कुलदीपक प्रज्वलित हुए, उस कुलकी शुद्ध परम्पराके विषयमें और दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता ही क्या है? एकनाथ-जैसे सत्पुरुषका जन्म किसी ऐसे-वैसे कुलमें नहीं हुआ करता। ईश्वरनिष्ठा, सदाचारसम्पन्नता, सत्यप्रीति, एकनिष्ठता इत्यादि सद्‌गुण जिस कुलमें परम्परासे चले आते हैं, उसीमें एकनाथ-जैसे अद्वितीय महात्मा उत्पन्न होते हैं। अनेक पीढ़ियोंका तप ऐसे महापुरुषावतारके रूपमें फलान्वित होता है। अस्तु। जिस महात्माकी भक्तिसे पहली बार भगवान्‌को यह कुल प्रिय हुआ, उन भानुदासका चरित्र ही इस अध्यायमें अवलोकन करें।

भानुदासका यज्ञोपवीत-संस्कार जब हो चुका, तब उनके पिताने उन्हें लौकिक विद्या सिखाना आरम्भ किया, इस अभिप्रायसे कि लड़का कुछ सीखकर साक्षर हो जायगा, परन्तु पूर्व-कर्मसे जिसकी बुद्धिपर हरिभक्तिके ही दृढ़ संस्कार जमे हुए थे उसे लौकिक विद्या कैसे भाती? पिताने बहुत समझाया-बुझाया, डराया-धमकाया, पर उससे कोई लाभ नहीं हुआ। एक दिन पिताके बहुत डाँटने-डपटनेपर दस वर्षके बालक भानुदास रूठकर, गाँवके बाहर एक जीर्ण मन्दिर था, उसके तहखानेमें जाकर छिपकर बैठ गये। तहखानेमें अँधेरा था, कहीं प्रकाश नहीं; वहाँ कोई मनुष्य आता-जाता भी नहीं दिखायी देता था, एकदम सन्नाटा था। ऐसे स्थानमें भगवान् सूर्यनारायणकी एक मूर्ति थी। भानुदास वहाँ सात दिन छिपे रहे। पिताको लड़केका कोई पता नहीं चला, वह विवश होकर शोक करने लगे। भानुदासने सूर्यनारायणके चरण पकड़े, प्रेमाश्रुओंसे उन्हें नहलाया और

गद्गद होकर उनसे करुण प्रार्थना की। दो दिन अन्न-जलके बिना बीतनेपर तीसरे दिन सूर्योदयके समय एक दिव्य ब्राह्मण दूधका एक पात्र लिये उनके सामने प्रकट हुआ। उसने कहा—'मैं विश्वचक्षु सूर्यनारायण हूँ, तुम्हारे पिताने बहुत कालतक मेरी आराधना की, इससे मेरे प्रसादसे तुम्हारा जन्म हुआ है। इसी जन्ममें तुम्हें परमात्मलाभ होगा और तुम कृतार्थ होगे।' यह कहकर ब्राह्मणने भानुदासको भरपेट दूध पिलाया और उसके सिरपर वरदहस्त रखा। इस प्रकार सात दिनतक रोज भानुदासको दूध मिलता रहा। दसवें दिन भानुदास मन्दिरके बाहर निकले। पिताने अपने पुत्रको पाया। सबको बड़ा हर्ष हुआ। सूर्यभगवान्‌के प्रसादकी कथा शीघ्र ही फैल गयी और भानुदासका पहले जो नाम था वह बदलकर भानुदास (याने सूर्योपासक) हो गया। कहते हैं कि इसके बाद भानुदासने तीन गायत्री-पुरश्चरण किये। एकनाथने भी अपने भागवत-ग्रन्थमें भानुदासको वन्दन करनेके प्रसंगसे इस कथाका वर्णन किया है।

यथासमय भानुदासका विवाह हुआ। कुछ वर्ष बाद भानुदासके माता-पिता परलोक सिधारे और गृहस्थीका सब भार भानुदासके सिर पड़ा। परन्तु गृहस्थीमें उनका ध्यान नहीं था। पाण्डुरंगकी भक्तिके सिवा और कोई धन्धा उन्हें प्रिय नहीं था। वह न कोई व्यापार करते, न किसीकी नौकरी ही। इस निःस्पृह वृत्तिके कारण घरमें अन्न-वस्त्रका जुटना भी कठिन हो गया। बाल-बच्चोंको दरिद्रताके कष्टोंमें ही रहना पड़ा। घरमें बाल-गोपालोंके रहते भी गृहिणीका मन सदा उदास रहता था। भानुदासका हाल ऐसा बेहाल देखकर उसके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हें कुछ पूँजी जुटा दी और कहा कि, 'इससे आप कपड़ेकी दूकान कर लीजिये, जो लाभ हो उससे परिवारका पालन-पोषण कीजिये और मूल

धीरे-धीरे चुका दीजिये।' भानुदासने कहा, 'अच्छा' साथ ही सबके सामने यह प्रतिज्ञा भी की कि, 'प्रारब्धसे जो कुछ मिल जायगा उसीसे निर्वाह करूँगा, पर प्राणोंपर भी बीतेगी तो भी मिथ्या भाषण नहीं करूँगा।' कपड़ा लेनेके लिये कोई ग्राहक दूकानपर आता तो आप उससे कहते—'यह खरीद है, मूलपर इतना नफा है, इसमें कुछ कम न होगा, लेना हो लीजिये; नहीं तो नहीं सही।' जिस-तिसको यही पाठ सुनाते और मन न भरनेसे ग्राहक जब लौट जाता तब मस्त होकर भजन करने लगते। घर-बाहर सर्वत्र नाम-स्मरणमें ही इनके दिन बीतते थे। इनकी सरलता देख व्यापारी लोग यही कहते कि इसके नसीबमें भीख ही बदी है! दुकानदारी भी कहीं बिना झूठ बोले, बिना धूर्तता किये होती है? यही वे लोग समझाते हैं, जिन्हें इस झूठ और धूर्तताका अभ्यास होता है। जब कोई नवयुवक पहले-पहल व्यापार करने चलता है और दुनियाकी चालोंसे अनजान रहता है तो वह सचाईके साथ व्यापार करना चाहता है। पर आगे चलकर जैसे-जैसे वह अन्य व्यापारियोंके ढंग देखता है और पास रुपया भी आने लगता है वैसे-वैसे वह लोभका पुतला बनता और शील खो देता है, उसी प्रवाहमें बहने लगता है। यही सामान्य नियम है। पर भानुदास असामान्य थे। सचाईके साथ सब कामोंको करनेका निश्चय रखना और तदनुसार लोभ-मोह आदिके वशमें न होकर निःशंक मनसे आचरण करना, इसके लिये बड़े धैर्यकी आवश्यकता होती है। ऐसा सात्त्विक धैर्य भानुदासमें था। विघ्नकी कोई परवा न करके वह अपने व्रतपर डटे रहे। व्यापारमें पहले उन्हें घाटा हुआ, दूकान चलती नहीं थी, साहूकार तकाजा करने लगे, लोग उनकी अवहेलना करने लगे, बराबरीके व्यापारी सत्यनिष्ठाकी दिल्लगी उड़ाने लगे। इस तरह अनेक प्रकारसे

भानुदासको व्यापारसे बड़ा कष्ट हुआ। सत्यनिष्ठासे किसीका बुरा नहीं होता, असत्यसे किसीका कल्याण नहीं होता, और सत्यनिष्ठ पुरुषोंपर जो विपत्तियाँ आती हैं, वे बहुत कालतक नहीं ठहरतीं; इस नियमके अनुसार तीन-चार वर्ष बाद सारी परिस्थिति पलट गयी। भानुदास बड़े ईश्वर-भक्त और सत्यनिष्ठ पुरुष हैं। उनकी यह ख्याति सर्वत्र फैलकर स्थिर हो गयी; इससे सब ग्राहक उन्हींकी दूकानपर आने लगे; कुछ ही वर्षमें भानुदासको खूब धन मिला और उनका दारिद्र्य दूर हो गया, बाल-बच्चोंके सब कष्ट दूर हुए और घरमें लक्ष्मी विराजने लगी।

भानुदासकी साख जम गयी, पर इससे उनके अनेक साथी व्यापारी उनसे डाह करने लगे। मनुष्यका कुछ ऐसा स्वभाव ही है कि अपनेसे अधिक दूसरेका सुख उससे नहीं सहा जाता। कपड़ेके व्यापारी अपने-अपने घोड़ेपर कपड़ा लादकर आस-पासके गाँवोंमें बाजारवाले दिन कपड़ा बेचने जाया करते थे। एक दिनकी बात है, सब व्यापारी बाजार-हाटके कामसे छुट्टी पाकर सूर्यास्तके समय लौटकर धर्मशालामें ठहरे। इनमें भानुदास भी थे। मध्यरात्रिका समय था, कहींसे मृदंगके बजनेकी आवाज आयी। भानुदासने यह जाना कि कहीं हरि-कीर्तन हो रहा है। अपने घोड़े और मालपर ध्यान रखनेके लिये अन्य साथियोंसे कहकर बड़े आनन्द और उत्साहके साथ वह हरि-कीर्तन सुनने चले गये। उधर वह भजनानन्दमें मग्न हो गये और इधर उनके कुछ ईर्ष्यालु साथियोंने उनका घोड़ा खोल दिया, उनके कपड़ेकी गाँठ एक खाईमें डाल दी और ऐसे आकर सो गये जैसे कुछ जानते ही न हों कि क्या हुआ और क्या नहीं हुआ। भगवान्‌को इन दुष्टोंकी यह दुष्टता सह्य नहीं हुई। उसने इन सन्त-द्वेषी व्यापारियोंकी आँखें खोलनेके लिये एक माया रची। रात दो

बजेके लगभग चोरोंका एक दल धर्मशालामें घुसा। इसने इन व्यापारियोंको खूब पीटा और फिर उनके घोड़े और सब माल लूट ले गये। भानुदास-जैसे साधु पुरुषके साथ हमलोगोंने ऐसी दुष्टता की, इस बातका कुछ व्यापारियोंको बड़ा दुःख हुआ और वे भानुदासके आनेकी बाट जोहते हुए बैठे रहे। हरि-कीर्तन जब समाप्त हुआ और भानुदास वहाँसे लौटे तब रास्तेमें एक ब्राह्मण उनके घोड़ेकी लगाम पकड़े मिला। भानुदासने उससे अपना घोड़ा लिया और धर्मशालामें पहुँचे। रातकी घटनाका सब हाल उन्हें मालूम हुआ। कुछने भानुदासकी कपड़ेकी गाँठ ला दी और अपराधकी क्षमा माँगी। भानुदासका घोड़ा उन्हें वापस मिला, सब माल भी सुरक्षित मिला, चोरोंकी मारसे भी बचे और रातभर हरि-कीर्तनका आनन्द लेते रहे और उनसे ईर्ष्या करनेवालोंके घोड़े और सब माल चोरोंके हाथ लगा, ऊपरसे ब्याजमें मार भी पड़ी। इन बातोंका विचार करते हुए भानुदास बैठे थे। उन्हें यह ध्यान हुआ कि स्वयं भगवान्‌ने मेरी रक्षा की और मेरे घोड़ेकी लगाम जिन्होंने मेरे हाथ दी, वह ब्राह्मण-वेशधारी पुरुष स्वयं विट्ठलभगवान् ही थे। यह सोचकर भानुदासका हृदय प्रेमसे गद्‌गद हो गया, दामाजीके लिये बिठू[१] महार[२] का भेष धारण करनेवाले भगवान्‌ने भानुदासके लिये एक पहर अश्वपालका काम किया। यह उस भक्तवत्सल भगवान्‌की महिमाके लिये तो उपयुक्त ही हुआ; परंतु जिस कारणसे दूसरोंकी ईर्ष्या हुई और भगवान्‌को कष्ट हुआ उस व्यापारको ही भानुदासने छोड़ देनेका

१. बिठू, विट्ठल, विठोबा, 'विष्णु' शब्दके अपभ्रंश हैं। पण्ढरपुरके विट्ठल या विठोबा साक्षात् श्रीकृष्ण हैं। उनके साथ रुक्मिणी माता भी हैं, जो रखुमाई आई (माई) कहलाती हैं।

२. महार अन्त्यजोंकी एक जाति है। झाड़ू देना, चौकीदारी करना, मरे हुए जानवरोंको उठा ले जाना ये सब काम इस जातिके लोग करते हैं।

निश्चय किया। उन्होंने अपना सब कपड़ा अन्य व्यापारियोंको बाँट दिया और आप निश्चिन्त हो गये।

भानुदास अब व्यापारसे सदाके लिये अलग ही हो गये। मानाभिमान छोड़कर दिन-रात ईश्वरका भजन करने लगे। महीपति बाबाने अपनी प्रेमभरी वाणीसे भानुदासके इस समयके जीवनक्रमका इस प्रकार वर्णन किया है—

'उनको किसी सांसारिक सुखके लिये किसीका मुँह नहीं देखना पड़ता था। प्रपंच-चिन्ता उनकी बिलकुल छूट गयी; स्त्री-पुत्रादिके साथ रहते हुए भी उनकी उदासीन वृत्ति थी। वह आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशी* के अवसरपर पण्ढरपुरकी यात्रा करते थे और वहाँ रेतीले मैदानमें प्रेमसे भगवद्भजन करते हुए तल्लीन हो जाते थे। नाना प्रकारकी कवित्व-कलासे भगवान् मेघश्यामके रूप और गुणोंका ध्यान करते थे। हृदयमें जो भगवत्प्रेम था वही कण्ठसे कीर्तनके रूपमें बाहर निकलता था। उनकी वाणी सुनकर दुष्ट और मूर्ख लोग भी प्रेमसे मुग्ध हो जाते थे। उन्हें भी सदा इनके मुखसे भगवान्‌के गुण-गान सुननेकी इच्छा बनी रहती थी। भानुदास 'यदृच्छालाभसन्तुष्ट' थे। कभी किसीसे कोई याचना नहीं करते थे। जो अन्न-वस्त्र मिल जाता उसीसे आनन्दके साथ निर्वाह करते थे। अपना-पराया-भाव भी उनमें नहीं रह गया। सर्वत्र वह एक ही भाव अनुभव करने लगे। चित्तमें कोई विकल्प ही न रहा।

भानुदास ऐसे परम भक्त हुए। भक्तिके आनन्दमें उनके मुखसे

---

* वारकरी सम्प्रदायमें एकादशीका बड़ा माहात्म्य है और आषाढ़ी तथा कार्तिकी एकादशीके लिये तो यह नियम है कि इस दिन पण्ढरपुर जाकर वहाँ भगवान्‌के दर्शन करने चाहिये। पण्ढरपुरकी इस यात्राको वारी कहते हैं और इसीलिये यह सम्प्रदाय वारकरी-सम्प्रदाय कहलाता है।

अनेक अभंग निकले। ये अभंग उनके शुद्ध प्रेमके दर्पण हैं। उनके ऐसे सौ अभंग आज भी मिलते हैं। इनमेंसे कुछका आशय नीचे देते हैं—

'इन कानोंसे तेरा नाम और गुण सुनूँगा। इन पैरोंसे तीर्थोंके ही रास्ते चलूँगा, यह नश्वर देह और किस काम आवेगी? भगवन्! मुझे ऐसी प्रेम-भक्ति दे कि मुँहसे तेरा ही नाम अखण्ड-रूपसे लेता रहूँ। ....पेटके लिये कोई धन्धा व्यर्थके लिये मैं नहीं करूँगा, उच्छिष्ट प्रसादसे क्षुधा हरूँगा। अपनी स्तुति और दूसरोंकी निन्दा, हे गोविन्द! मैं कभी न करूँ। सब प्राणियोंमें हे राम! मैं तुझे ही देखूँ और तेरे प्रसादसे ही सन्तुष्ट रहूँ। हे देव! भानुदास और कुछ नहीं माँगता। वैकुण्ठलोकमें हमें कमी ही किस बातकी है?

'बैठकर रामनामके ध्यानका अनुष्ठान करें, उसीमें मनको दृढ़कर एकविध भावमें मगन हों, इससे बढ़कर कोई साधन नहीं है। परद्रव्य और परदाराका छूत मानें, इससे बढ़कर निर्मल कोई तप नहीं है। भानुदास कहते हैं कि इस कलियुगमें रामनामकी पताका फहरा दी है।

'अब उन्मनी-समाधि नहीं याद आती; विट्ठलभगवान्‌को देखनेसे ही मन आनन्द-ही-आनन्द हो जाता है। यही भगवान् परमानन्द हैं, आनन्दके कन्द हैं। मनमें भगवान्‌का रूप ऐसे आकर बैठ गया है कि जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति कोई भी अवस्था याद नहीं आती। विश्रान्तिका परम स्थान विट्ठल-निधान ही जो मिल गया।

'जो अनादि परब्रह्म निजधाम है वही यह ईंटपर खड़ी मूर्ति मेघश्याम है। जिसे देखकर श्रुति 'नेति नेति' कहकर लौट जाती है, वही परब्रह्ममूर्ति इस ईंटपर है। .....ज्ञानियोंका जो ज्ञान है, मुनिजनोंका जो ध्यान है, इस ईंटपर वही परब्रह्म-निधान है।

पुण्डलीकके तपसे यह चीज मिली है। भानुदास यही माँगता है कि भगवन्! यही वर दो कि मैं तेरी सेवा करूँ।

'हृदयको दृढ़ करके मैं जो आया तो गुसाईं मिल गये और जन्म-मरणका बन्धन टूट गया। जो इच्छा की वह मिला। मैं धन्य हुआ, कृतकृत्य हुआ। अब जितने जन्म हों सब तेरी सेवाके लिये हों।'

भानुदास परम प्रेमी भक्त थे। सत्यनिष्ठा, आत्मस्तुति और परनिन्दाका त्याग, परद्रव्य और परदाराका छूत, सर्वत्र समभाव, नाम-संकीर्तनकी प्रीति और परमात्मप्राप्तिका आनन्द इत्यादि उनकी दैवी सम्पत्ति थी और उनकी यह सम्पत्ति उनके अभंगोंमें भरी हुई है। एकादशीका व्रत और पण्ढरीकी यात्राका नियम उनका अखण्ड था। प्रति आषाढ़ी और कार्तिकी एकादशीको पण्ढरपुरकी यात्रा वह अवश्य करते थे। आँखें भरकर ईंटपर खड़े पण्ढरीनाथके लावण्य-रूपका दर्शन करनेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था और इस आनन्दका उन्होंने जहाँ-तहाँ वर्णन किया है। इसीका उन्होंने सबको उपदेश भी किया है। 'उस सगुण रूपपर काय, वाक् और मन लुब्ध हो जाते हैं।' यह उनका अनुभव था। उन्होंने ईश्वरसे यही प्रार्थना भी की है कि जन्म-जन्मान्तरमें मेरी यही इच्छा पूरी करो कि मैं सदा भगवन्नाम लेता रहूँ और मुझे सदा सन्तोंका समागम प्राप्त हो। पण्ढरीनाथने भानुदासको अपने स्वरूपमें स्थान दिया। भानुदास धन्य हुए। उन महाभागवतको मेरे सहस्रों प्रणाम पहुँचें।

भानुदास महाभागवत तो थे ही, पर उन्होंने महाराष्ट्रमण्डलकी एक और बहुत बड़ी सेवा की है। श्रीविट्ठलकी मूर्ति भानुदास अनागोंदीसे वापिस ले आये इससे उनका यश सर्वत्र फैल गया। वह प्रसंग इस प्रकार है—भानुदासके समय तुंगभद्रा-नदीके

तटपर विजया नगर उर्फ अनागोंदी-राज्यमें कृष्णराय नामक बलशाली राजा राज करते थे। विजया नगरमें इन-जैसा पराक्रमी, दृढ़, तेजस्वी, विद्वान् और धर्मनिष्ठ राजा दूसरा नहीं हुआ। इन्होंने बाईस वर्ष (शाके १४३०—१४५२) राज्य किया। पूर्व, पश्चिम और दक्षिण इन तीन दिशाओंमें इन्होंने अपने राज्यको समुद्रतटतक विस्तृत किया था। इनका ऐसा प्रताप था कि इनका कोई शत्रु ही नहीं रह गया। बीजापुरके इस्माइल आदिलशाहको परास्त करके इन्होंने रामेश्वरसे लेकर बेलगाँवतक अपना सिक्का चलाया। अनेकों राजाओंको पादाक्रान्त कर डाला, अनेक दुर्ग बनवाये, जमीनकी पैमाइश कराकर राज-कर वसूल करनेकी पद्धति निश्चित की, नहर खुदवाये, व्यापार, कृषि, कला-कौशल और नाना प्रकारकी विद्याओंको प्रोत्साहित किया और हिन्दू-धर्मका सब ओर यश फैलाया। तुंगभद्राका विश्वविख्यात नहर इन्होंने ही खुदवाया। हुबली, बंगलूर, बेल्लारी आदि व्यापारिक केन्द्र इन्होंने ही कायम किये। इनके आश्रयमें आठ विद्वद्रत्न थे जो 'दिग्गज' कहाते थे। इन्हींमें सुप्रसिद्ध पण्डित अप्यय्य दीक्षित थे। तेन्नलु रामकृष्ण नामक बड़े मसखरे और चतुर कवि इनके मित्र थे। इस कविके चातुर्यकी अनेक कथाएँ तेलगू-भाषामें प्रचलित हैं। इन राजा कृष्णरायका प्रजापर अत्यन्त प्रेम था, प्रजा भी इन्हें वैसा ही मानती और चाहती थी। इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये और उनके खर्चके लिये जागीरें नियत कर दीं। इन कृष्णरायके साथ भानुदासका भी कुछ सम्बन्ध है।

राजा कृष्णराय एक बार देव-दर्शनार्थ पण्ढरपुर गये थे। वहाँ वारकरियोंका प्रेमपूर्ण कीर्तनानन्द देखकर यह बहुत प्रसन्न हुए। श्रीविट्ठलमूर्तिसे उन्हें इतना प्रेम हो गया कि उस मूर्तिको अपनी राजधानीमें ले जाकर प्रतिष्ठित करनेकी उनकी इच्छा हुई। उनके

लिये ऐसा करना कुछ कठिन नहीं था। स्थान-स्थानमें उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि पण्ढरपुरसे अनागोंदीतक उस मूर्तिको बड़ी शुचिताके साथ ले गये। वहाँ वह मूर्ति यथाविधि प्रतिष्ठित की गयी, बड़े ठाटके साथ उसकी सार्वजनिक पूजा हुई, नाना प्रकारके भोग चढ़ाये गये, अनेक स्वर्णरत्नालंकार पहनाये गये और नवरत्नोंका हार अर्पण किया गया। मूर्तिपर अवश्य ही उन्होंने बड़ा कड़ा पहरा रखा और पूजा-अर्चा बड़ी भक्तिके साथ होने लगी। इधर आषाढ़ी एकादशीके दिन चारों ओरसे वारकरी पण्ढरी पहुँचे। उन्होंने देखा, देवालयमें देवता नहीं हैं! देखकर सब बहुत उदास हुए। कुछ भक्तोंने तो ऐसा निश्चय किया कि जबतक देवदर्शन नहीं होंगे तबतक यहाँसे टलेंगे ही नहीं। इस निश्चयके साथ वे गरुडपार* के मैदानमें ही पड़े रहे। राजाके बिना जैसी प्रजा या सिन्दूर बिना जैसे किसी सुवासिनीका मुख, वैसे ही श्रीविट्ठलके बिना वह भक्तसमुदाय उदास हो गया। आजतक जिन चरणोंपर हमलोगोंने सुमनोंकी तरह अपने सिर अर्पण किये, ईंटपर खड़ी मूर्तिका जो सुन्दर स्वरूप 'सब सुखोंका आगर' कहकर आँखें भरकर देखा, जिसके दर्शनमात्रसे लाखों जीवोंको ब्रह्मत्व प्राप्त हुआ, नामदेवादि भक्तोंने जिसे बुलवा दिया; वह कटिपर कर धरे प्रेमी भक्तोंको भक्ति-सुखामृत-पान करानेवाला श्रीविट्ठलका सगुण रूप ही इन आँखोंसे देखें और स्वसुखामृतका अखण्ड आस्वाद लें। यह जिन पण्ढरीमें आये परम आर्त और निस्सीम भक्तोंकी इच्छा थी उनमें सबके आगे थे भानुदास। उन्होंने भक्तोंसे कहा, 'मैं अनागोंदी जाकर श्रीविट्ठलको

* पण्ढरपुरमें श्रीविट्ठलभगवान्‌के मन्दिरमें चाँदीका एक खम्भा है जिसे गरुडस्तम्भ कहते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दिरके बाहर एक विस्तीर्ण आँगन है जिसमें गरुडजीकी एक प्रस्तर मूर्ति है। यही आँगन गरुडपार कहलाता है।

ले आता हूँ। आपलोग तबतक यहीं निश्चिन्त होकर अखण्ड नामघोष करते रहें।' यह कहकर भानुदास अनागोंदी चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने तुंगभद्रा नदीमें स्नान किया और नित्यकर्म करके प्रभुकी खोजमें निकले। भानुदास अपने सदाचरण, भक्ति और ब्रह्मानुभवसे पाण्डुरंगके प्यारे हो ही चुके थे। मध्य रात्रिके लगभग वह राजप्रासादके समीप पहुँचे। दरवाजोंमें लगे ताले आप ही खुल पड़े और एक क्षणके अंदर ही भानुदास आराध्यदेव श्रीविट्ठलमूर्तिके सामने खड़े हो गये। भानुदासको उस समय अपनी देहका भान नहीं था। उन्होंने भगवान्‌के चरणोंको दृढ़ आलिंगन किया। प्रेमाश्रुओंसे चरणोंको नहलाकर भानुदासने भगवान्‌से प्रार्थना की—'भगवन्! आपके बिना सब भागवत-भक्त दीन हो गये हैं और उनके मुँहसे शब्द नहीं निकलता है। रखुमाई माई (रुक्मिणी माता) भी उदास हो गयी हैं और आश्चर्य करती हैं कि भगवान्‌ने ऐसा मौन क्यों धारण किया? भगवन्! अब आप हमारे संग चले चलिये।'

पत्थरको भी पिघला देनेवाली दीनतासे भानुदासने भगवान्‌के चरण पकड़े। भगवान्‌ने भी तुरंत अपना प्रसाद दिया। भगवान्‌के गलेमें जो नवरत्न-हार था वह पुष्पमालाके साथ टूटकर भानुदासके हाथोंपर गिरा। इसे महाप्रसाद जानकर भानुदास राजप्रासादके बाहर निकले। तब सब दरवाजे पहलेकी तरह बंद हो गये। भोरमें जब पुजारी भगवान्‌की आरती करने आये तब उन्होंने देखा कि ठाकुरजीके गलेमें नवरत्न-हार नहीं है। तुरंत उन्होंने राजाको खबर दी। सब लोग आश्चर्य करने लगे कि इतना कड़ा पहरा और पक्का बंदोबस्त होते हुए यह कैसा चोर था जो राजप्रासादमें घुसा और नवरत्न-हार उड़ा ले गया। नगरमें चारों ओर राजकर्मचारी तहकीकात करने लगे, तब तुंगभद्राके तटपर निःशंक-मनसे गाते-

नाचते श्रीविट्ठलरूपके साथ समरस हुए भानुदास दिखायी दिये, और उनके पास श्रीविट्ठलके गलेका नवरत्न-हार भी पुष्पहारके साथ दिखायी दिया। राजा कृष्णराय अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने चोरको सूलीपर चढ़ानेकी आज्ञा दी। सूलीके पास पहुँचाये जाते ही भानुदासने कहा—

'आकाश गरजता हुआ देखे, अखिल ब्रह्माण्ड भंग हो जाय और बड़वानल त्रिभुवनको ग्रास कर ले तो इससे क्या, मैं तो हे विट्ठल! तुम्हारी ही बाट जोह रहा हूँ। सातों समुद्र मिलकर एक हो जायँ, यह पृथ्वी चाहे उसमें डूब जाय, अथवा पंचमहाभूत प्रलयको प्राप्त हों; तो भी हे विट्ठल! तुम्हीं तो मेरे संगी हो। चाहे जैसा जड-भार मुझपर आ पड़े पर मैं तुम्हारा नाम न छोड़ूँगा, जैसे पतिव्रता अपने प्राणेश्वरका नाम नहीं छोड़ती। यही मेरा निश्चय है।'

इतना अटल और ऐसा प्रचण्ड निश्चय, ऐसा अलौकिक एकविध भाव जिस भक्तका हो, क्या प्रह्लादप्रिय पाण्डुरंग उसकी कभी उपेक्षा कर सकते हैं? ऐसा कौन-सा संकट है जिसमेंसे भगवान् भक्तको न उबारें? भगवान्ने क्या कभी अपने किसी भक्तकी उपेक्षा की है? भक्त भानुदासको जो ताप हुआ उससे 'मातासे भी अधिक कोमल-हृदय, चन्द्रमासे भी अधिक शीतल और जलसे भी अधिक द्रवीभूत, प्रेमके अगाध समुद्र भक्तवत्सल पाण्डुरंगका हृदय उसी क्षण उमड़ पड़ा और क्षणमात्रमें उस सूलीमें पत्ते निकल आये, क्षणार्धमें फूल-फलसे लदकर वह एक सुहावना वृक्ष बन गया। भगवान्की लीला अपरम्पार है।' यह चमत्कार देखकर राजकर्मचारी राजाके पास गये और उन्हें सब हाल कह सुनाया। यह सुनकर राजाका हृदय एक बार काँप गया और उन्होंने समझा कि जिसे चोर समझकर सूली चढ़ानेकी आज्ञा दी गयी वह चोर नहीं, कोई महान्

भगवद्भक्त है। भानुदासको पालकीमें बिठाकर वह राजप्रासादमें ले गये। श्रीविट्ठलके दर्शन होते ही भानुदास गद्‌गद हो गये, उन्हें रोमांच हो आया और उनके नेत्रोंसे आनन्दवारिकी वर्षा होने लगी। भानुदासकी अपूर्व भक्ति देखकर राजाको परम सन्तोष हुआ और उन्होंने भानुदासको श्रीविट्ठलकी मूर्ति पण्ढरपुर ले जानेकी अनुमति दी। घट-घटमें विराजनेवाले अनन्त ब्रह्माण्डव्यापी भगवान् भक्तके लिये छोटे-से बन गये और श्रीविट्ठलकी उस साँवरी मूर्तिको साथ लिये भानुदास वहाँसे विदा हुए। भानुदास श्रीविट्ठल-मूर्ति लिये आ रहे हैं यह सुनकर पण्ढरपुर तथा आस-पासके हजारों भावुक वैष्णव वीर झण्डी-पताका लिये ताल-मृदंग बजाते हुए उनकी अगवानीके लिये पहुँचे। चार दिन पण्ढरपुरमें आनन्दका मानो समुद्र ही उमड़ पड़ा। रथपर भगवान्‌को बैठाकर उनका जुलूस निकाला गया। वह दिन कार्तिकी एकादशीका था। अबतक प्रत्येक कार्तिकी एकादशीको रथका जुलूस निकलता है। यह वार्षिक जुलूस, भानुदास अनागोंदीसे विट्ठल-मूर्ति ले आये, उसी मंगल दिनका स्मारक है।

पण्ढरपुरमें भक्तोंने भानुदासका जय-जयकार किया। श्रीविट्ठल-मूर्ति पण्ढरपुरमें न रहनेसे पण्ढरपुरका सम्प्रदाय भी भंग होनेका समय आ गया था, भक्त भानुदासकी भक्तिसे वह समय टल गया और भगवान्‌की मूर्ति फिर पण्ढरपुरमें आ विराजी, इसके लिये भक्तोंने भानुदासकी स्तुति की, उन्हें अनेक धन्यवाद दिये। 'सूखी लकड़ीमें अंकुर निकले। भगवान् फिर पण्ढरपुर आ गये।' इस आशयके अभंगपर गरुडपारके समीप भानुदासका कीर्तन हुआ। भक्तमण्डलपर भानुदासके अनन्त उपकार हैं। भानुदासका भक्ति-ऋण भगवान्‌ने भी उनके कुलमें श्रीएकनाथ-जैसे विश्वविख्यात वन्दनीय पुरुष उत्पन्न करके शोध किया। उपर्युक्त घटनाके

पश्चात् भानुदासकी भक्तिका परम विकास हुआ। पैठणमें एक दिन रातको हाथमें वीणा लिये भानुदास भजन करते-करते प्रेमसे भगवान्‌के ध्यानमें ऐसे लीन हो गये कि उनके सामने स्वयं श्रीपाण्डुरंग प्रकट हुए। धन्य भानुदास! धन्य एकनाथ! और धन्य उनका पावन कुल! भानुदासके पुत्र चक्रपाणि, चक्रपाणिके सूर्यनारायण और सूर्यनारायणके एकनाथ हुए। एकनाथकी माताका नाम रुक्मिणी था। भानुदासके पावन कुलमें अपना जन्म हुआ इसे एकनाथ अपना अहोभाग्य समझते थे।

श्रीएकनाथने अपने 'रुक्मिणी-स्वयंवर' ग्रन्थमें भानुदासके विषयमें स्वयं ही कहा है—

मी जन्मलों धन्यवंशीं । म्होणनि हरिभक्ति आम्हांसी ॥
सन्त सोइरे निज सुखासीं । वंश कृष्णासी निरविला ॥

[धन्यवंशमें मेरा जन्म हुआ, इसीसे हमें हरि-भक्ति प्राप्त हुई; सन्त-सज्जन हमारे सगे-सम्बन्धी हुए और हमारा वंश श्रीकृष्णको अर्पित हुआ।]

श्रीशुकाष्टककी टीकामें भी लिखा है—

पूर्वी भानुकृपा सौरस । पितामहपिता भानुदास।
त्यापासो तिहा वंश । जनार्दनप्रिय ॥

[पहले सूर्यभगवान्‌की कृपा हुई जिससे हमारे पितामहपिता [प्रपितामह] भानुदास हुए। उन्हींसे यह वंश जनार्दनको प्रिय हुआ।]

अपने भागवत-ग्रन्थके उपोद्घातमें भानुदासको वन्दन करते हुए एकनाथ महाराजके ये उद्‌गार हैं—'पितामहके पिता भानुदासको अब हम वन्दन करते हैं, जिनके कारण भगवान्‌को हमारा वंश सब प्रकारसे प्रिय हुआ, जिन्होंने बचपनमें भानु (सूर्य) की सेवा की और स्वयं चिद्भानु होकर, मानाभिमानको जीतकर जो 'भगवत्पावन' हुए जिनकी 'पदबन्धप्राप्ति'से श्रीविठ्ठल-मूर्तिके

दर्शन हुए। उन भानुदासके पुत्र चक्रपाणि हुए, चक्रपाणिके सुलक्षण सुतका नाम सूर्य रखकर भानुदास निजमें निज होकर रहे। उन सूर्यके प्रभा-प्रताप-किरणसे माता रुक्मिणी प्रसूत हुईं जो मेरी माता हैं। ग्रन्थारम्भमें पूर्वजमालाको यह वन्दन किया है। यह मेरी भाग्यलीला धन्य है जो ऐसे वैष्णवकुलमें मेरा जन्म हुआ।'

इन उद्गारोंसे यह मालूम हो जाता है कि एकनाथ भानुदासको कितना मानते थे। भानुदासके कारण हमारा वंश भगवान्‌को प्रिय हुआ और ऐसे वैष्णव-पवित्र कुलमें मेरा जन्म हुआ यह मेरा अहोभाग्य है, इत्यादि प्रेमभरे उद्गार हृदयको हिलानेवाले हैं। बड़े सात्त्विक अभिमानके साथ एकनाथ कहते हैं कि भानुदासके पावन कुलमें मेरा जन्म हुआ। इसीसे भगवद्-भक्तिमें मेरी प्रीति हुई। इस वैष्णव-कुलमें जन्म होनेपर अपनी 'भाग्यलीला'को एकनाथने 'धन्य' कहा है। इस धन्योद्गारका मर्म अनुभवसे ही जाना जा सकता है। भानुदासकी सत्यनिष्ठा, उनकी एकविध भक्ति और उनका शुद्धाचरण इत्यादि गुणोंका विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि '**शुचीनां श्रीमतां गेहे**' एकनाथ एक योगभ्रष्ट महात्मा ही उत्पन्न हुए। इससे शुद्ध कुल-परम्पराकी रक्षाका कितना महत्त्व है यह भी प्रकट होता है।

एकनाथके पिता सूर्यनारायणका नामकरण भानुदासने ही किया था और इसके बाद ही उनका देहावसान हुआ। यह श्रीएकनाथके ही उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट है। यह घटना शाके १४३५ (संवत् १५७०) के लगभग हुई होगी।

बाल्यकाल

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्

—गीता ६। ४३

देह तो छोटी-सी ही होती है, पर उसके आत्मज्ञानकी पौ फटती है और ऐसा प्रकाश फैलता है जैसा सूर्यके आगे उसका अपना प्रकाश फैलता है। उसे अवस्थाकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, वयसकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, बचपनमें ही सर्वज्ञता उसके गलेमें जयमाल पहनाती है।

—ज्ञानेश्वरी ६। ४५२-५३

भानुदासने अपने पुत्रका नाम 'चक्रपाणि' और पोतेका नाम 'सूर्यनारायण' रखा। 'सूर्यनारायण' शिशु ही थे जब भानुदास परलोक सिधारे। इसके बीस वर्ष बाद—शाके १४५५ के लगभग—सूर्यनारायणके, रुक्मिणीके गर्भसे 'एकनाथ' उत्पन्न हुए। एकनाथके जन्मकालमें मूल नक्षत्र पड़ा था। इससे जन्मते ही पिताका और कुछ ही काल बाद माताका देहान्त हो गया। दादा और दादी, इन्हें बचपनमें प्रेमसे एका (एक्या) कहकर पुकारते थे। जन्मते ही माँ-बापको ग्रास करके बचे हुए एकनाथके नामका, अध्यात्मदृष्टिसे, जो विलक्षण और गम्भीर अर्थ होता है उसे स्वयं एकनाथने ही अपने कुछ अभंगोंमें इस प्रकार व्यक्त किया है—'मूलके मूलमें ही एका पैदा हुआ' इससे माँ-बाप डर गये। ऐसा यह मूल नक्षत्र आ पड़ा कि मैं दोनोंको निर्मूल करने लगा। उन्होंने नक्षत्रकी शान्ति की सो स्वयं ही शान्त हो गये और मैं मूलमें लगकर अपना नाम सार्थक करने लगा। एका जनार्दनकी शरणमें जाकर मूलकी वार्तामें पहुँचा और

माँ (मायाप्रकृति)-सहित बाप (ब्रह्म)-को घोटने लगा।'

जिन अभंगोंका यह आशय दिया है वे अभंग कहीं छपे हुए नहीं हैं। पैठणमें कुछ पुराने पोथी-पत्रोंको देखते हुए ये अभंग मिल गये। इनका आशय कितना भावपूर्ण और कितना दिव्य है! एकनाथका जन्म होते ही मूल नक्षत्रके कारण माँ-बाप डर गये और उन्होंने नक्षत्रकी शान्ति करायी, पर दोनोंका देहान्त हो गया। पर एकनाथ मूलमें ही लगे रहे, इससे शुद्ध आत्मस्वरूपाकार हो गये, यह सरल आशय तो है ही पर इससे भी अधिक गम्भीर ध्वनि भी इसमें है और वह यह कि मा याने माया (प्रकृति) और बाप याने पुरुष—क्षर और अक्षर—उन दोनोंको ही ग्रास करके क्षराक्षरके परे जो त्रिगुणातीत परब्रह्म है उसीमें 'एकनाथ' मिल गये। अस्तु।

एकनाथने अपने पिता सूर्यनारायणको 'सुलक्षण' कहकर स्मरण किया है और कहा है कि सूर्य-प्रभाके प्रताप-किरणोंसे माता रुक्मिणीने पुत्र प्रसव किया। सूर्यनारायण बड़े ही बुद्धिमान् पुरुष थे और रुक्मिणी माता बड़ी पतिव्रता और सुशीला देवी थीं। माँ-बाप अपने पुत्रका बचपनका लाड़-प्यार करनेके लिये भी जीवित न रहे, और एकनाथका लालन-पालन करनेका सम्पूर्ण भार चक्रपाणिपर पड़ा। भानुदास, भानुदासके पुत्र चक्रपाणि, चक्रपाणिके सूर्यनारायण, सूर्यनारायणके एकनाथ ये सब नाम भी बड़े बोधक हैं। नाममें क्या रखा है, यह कहना ठीक नहीं। बच्चोंके जो नाम रखे जाते हैं उनमें भी उन नामोंको रखनेवालोंका स्वभाव दिखायी देता है। भानुदासने अपने पुत्र और प्रपौत्रके ऐसे नाम रखे जिनसे उनकी हरि-भक्ति प्रकट होती है। बच्चोंके लल्लू-बुद्धू नाम रखनेवाले लल्लू-बुद्धू संसारमें बहुत हैं! 'सुलोचना,' 'चारुचन्द्र' आदि शरीर-सौन्दर्य-दर्शक

नाम रखनेवाले रसिक माँ-बाप भी बहुत हैं; पर धर्मशील घरानोंमें यह पद्धति है कि अपने उपास्य देवों, तीर्थों, सन्तों और साध्वियों तथा अन्य देवी-देवताओंके ही नाम अपने बच्चोंके रखे जाते हैं। रक्त-मांसका यह स्थूल पिण्ड निन्द्य ही है। आचार्यके कथनानुसार—

त्वङ्मांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम्।
पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं निन्द्यमिदं वपुः॥

(विवेक-चूडामणि ८९)

त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेद, मज्जा और अस्थिसे बना हुआ तथा विष्टा-मूत्रसे भरा हुआ यह शरीर निन्द्य ही है, तथापि इसी निन्द्य शरीरका आश्रय करके ही परम पावन परमात्माकी प्राप्ति करनी होती है। शरीर ऐसा निन्द्य और नश्वर होनेपर भी पहचानके लिये इसका कुछ-न-कुछ नाम रखना ही पड़ता है और जब नाम रखना ही पड़ता है तब ऐसा ही नाम क्यों न रखा जाय जिससे पद-पदपर भगवान्‌का स्मरण हो? सारा संसार ईश्वररूप है। इस भावनाको अखण्ड रखनेके लिये भक्त लोग संसारिक बातोंमें भी हर जगह ऐसा उपाय किये रहते हैं कि जिससे सदा भगवान्‌का स्मरण होता रहे। नामकरण भी ऐसा ही एक उपाय है। भक्तोंके सांसारिक व्यवहारके नाम भी भगवान्‌का स्मरण करानेवाले होते हैं। अंदर, बाहर सर्वत्र भगवान्‌का ही ध्यान और दर्शन करते हुए भक्त संसारको ही ईश्वररूप बना देते हैं। नामोच्चारणके साथ नामातीतका स्मरण हो यही नामकरणका हेतु होता है। श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें अजामिलकी कथा है। अजामिल महापापी था, पर उसने अपने लाडले बेटेका नाम 'नारायण' रखा था; इससे जहाँ-तहाँ 'नारायण'का नामोच्चारण करते-करते उसकी वाणी पवित्र हो गयी। नारायण-नामका कुछ

ऐसा चसका उसे लग गया कि प्राणोत्क्रमणके समय विष्णुभगवान्के दूत उसे वैकुण्ठ-धाम ले जानेके लिये आये। पवित्र नामोंकी कुछ ऐसी महिमा है कि उनके साथ पवित्र विभूतियोंका स्मरण होता है, उनका चरित्र सामने आ जाता है और उसीमेंसे अपने उद्धारका मार्ग भी निकल पड़ता है। पवित्र नामके सात्त्विक संस्कारसे वाणी पवित्र हो जाती है, उससे मन और बुद्धिपर भी दिव्य संस्कार होता है। भक्तोंकी रक्षा और दुष्टोंके नाशके लिये भगवान्ने अपने हाथमें चक्र धारण किया है इसका सदा स्मरण रहे। इसलिये भानुदासने अपने पुत्रका नाम चक्रपाणि रखा। भानुदासपर उनके बचपनमें जिन सूर्यनारायणने ब्राह्मण-वेशमें आकर अनुग्रह किया, उनका नित्य स्मरण रखनेके लिये उन्होंने अपने पोतेका नाम सूर्यनारायण रखा। यही परम्परा आगे भी चली। 'एकनाथ' तो एकनाथ ही हुए। एकनाथने अपने पुत्रका नाम 'हरि' रखा और अपनी दो पुत्रियोंके नाम 'गंगा' और 'गोदा' रखकर अपने काशीवास तथा नित्यके पैठणवासकी संगिनी गोदाका स्मरण जागृत रखा। गोदाका प्यारका नाम उन्होंने 'लीला' रखा था सो भी भगवन्मायाका ही स्मरण था मानो 'एकनाथ'-रूप पुरुषोत्तमके घर इस प्रकार 'हरि' और 'लीला' ये भाई-बहन खेलने लगे। लीलाके पुत्रका नाम भी एकनाथने 'मुक्तेश्वर' रखा। एकनाथकी स्त्रीका नाम गिरिजा था। भानुदासके कुलमें सबके ये नाम भी उनके घरमें विलास करनेवाली भगवद्भक्तिका ही स्मरण करानेवाले हैं, इसीलिये यहाँ इस बातका इतना विस्तार किया गया है।

एकनाथ बचपनसे ही बड़े बुद्धिमान् और श्रद्धावान् थे। श्रद्धा और मेधा उनके जन्मकालमें ही उनके साथ उत्पन्न हुई थीं; अथवा यह कहिये कि इनका स्नेह उन्होंने पूर्वजन्ममें ही प्राप्त

किया था। स्नान, सन्ध्या, हरिभजन, पुराणश्रवण और देव-पूजनमें उनकी बड़ी प्रीति थी। हाथमें करताल लेकर या कन्धेपर कलछुल या ऐसी ही कोई चीज रखकर और उसीको वीणा समझकर वह भजन करते या पत्थर सामने रखकर उसपर फूल चढ़ाकर 'राम-कृष्ण-हरि' कहते हुए नाचने लगते। कोई कथावाचक या कीर्तन करनेवाले हरिभक्त कहींसे आ जाते तो उन्हें दण्डवत् करते और ऐसी एकाग्रताके साथ कथा सुनते जैसे सब कुछ समझ रहे हों। कोई कुछ कहता तो परिप्रश्न करके वक्ताको रिझाते। दादा पूजामें बैठते तब उन्हींके पास बैठकर पूजा-कर्ममें उनकी सहायता करते। इनके ये सुलक्षण देखकर वृद्ध दादा और दादीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगते। एकनाथ हाथमें कोई डंडा लेते और उसीमें कोई कपड़ा बाँधकर उसीको 'यह हमारा झंडा' कहकर नाचते-कूदते तब उन वृद्धोंसे न रहा जाता। वे उसे गोदमें उठा लेते और बड़ा प्यार करते, यह कहते कि 'यह लड़का भानुदासका यश दिग्-दिगन्तमें फैलावेगा। अड़ोसी-पड़ोसियोंको भी एकनाथने अपने गुणोंसे मोहित किया। बचपनमें भी इनका स्वभाव हठी नहीं था, न इनमें कोई लड़कपन ही था। जो कुछ मिलता उसीसे यह सन्तुष्ट रहते। देव, ब्राह्मण और साधु-महात्माओंके विषयमें सहज प्रेम, सत्यमें प्रीति, अन्तर्बाह्य-सरलता, भजनमें मग्न होकर भूख-प्यासको भी भूल जाना, सबके प्रिय होना, नम्रता ये सब गुण एकनाथमें बचपनसे ही थे। इनके लिये उन्हें कोई अभ्यास नहीं करना पड़ा। अनेक गुणोंका सहज साहचर्य होनेसे निरभिमानिता और शान्ति ये दो अलौकिक गुण भी उनमें बचपनसे ही प्रकट थे। इनकी मनोहर मूर्ति देखकर तथा इन्हें भानुदासके श्रेष्ठ कुलका बचा हुआ एकमात्र तन्तु जानकर पैठणके लोग इन्हें बहुत प्यार करते और इस प्यारके

साथ इन गुणोंका योग होनेसे बालकपनसे ही इस बाल भागवतका जय-जयकार होने लगा।

छठे वर्ष एकनाथका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ और उन्हें ब्रह्म-कर्मकी उत्तम शिक्षा मिली। नित्य सायंकाल कथा बाँचनेवाले पण्डित इन्हींके घर कथा बाँचा करते और इनसे नियमपूर्वक संस्कृतका भी अध्ययन करा लेते थे। पुराणोंकी कथाएँ एकनाथ बड़ी श्रद्धासे सुनते थे, सुनी हुई कथाएँ फिर अपनी दादीको सुनाते थे और दादासे तथा पण्डितजीसे अनेक परिप्रश्न करके उन्हें थका डालते थे। किसी चीजको कण्ठ करनेमें उन्हें विशेष समय नहीं लगता था। वयस् इतनी अल्प होनेपर भी त्रिकाल सन्ध्या-वन्दनमें यह कभी चूकते नहीं थे। स्तोत्रपाठ, सायं-प्रातः देव-गुरुजनोंका वन्दन आदि भी नियमपूर्वक करते थे। स्नान किये बिना इन्होंने कभी जल भी नहीं प्राशन किया, बिना जल लिये कभी लघुशंका करने नहीं बैठे। इनकी नियमितता और शुचिता देखकर बड़े-बूढ़े दाँतों उँगली दबाते। इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। इससे जो विषय गुरु उन्हें समझाते उसे सुनते-सुनते ही वह विषय इन्हें इतना अवगत हो जाता कि गुरुको ही कभी-कभी यह सन्देह होता था कि इसका जाना हुआ विषय ही तो कहीं हमने इसे दुबारा नहीं समझाया। एकनाथका अध्ययन पूर्वाभ्यस्त विषयोंका आवर्तन ही था। इनकी सत्त्वप्रधान बुद्धिमें ज्ञानका तुरंत उदय हो जाता था। '**सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन् प्रकाश उपजायते**' गीताके इस श्लोकपर टीका लिखते हुए ज्ञानेश्वर महाराजने कहा है कि 'सत्त्वगुणका उदय होनेपर वसन्त-ऋतुमें कमल खिलनेपर उसकी सुगन्ध जैसे सर्वत्र फैल जाती है वैसे ही बुद्धितेज अन्दर भरकर भी न समा सकनेके कारण बाहर निकलने लगता है, अथवा वर्षाकालमें महानदी जैसे जलसे पूर्ण

भरकर दोनों किनारे उछलने लगती है, उसी प्रकार बुद्धि जिस-जिस शास्त्रको स्पर्श करती है, उस-उसपर अधिकार जमाती है; अथवा पूर्णिमाकी रातको चन्द्रप्रभा जिस प्रकार आकाशमें सर्वत्र फैल जाती है, उसी प्रकार सत्त्वगुणी पुरुषकी वृत्ति सम्पूर्ण ज्ञान आत्मसात् कर लेती है।' ज्ञानेश्वर महाराजका आनुभविक वर्णन एकनाथके विषयमें भी पूर्ण सत्य है। एकनाथकी बुद्धि इस प्रकारकी होनेसे उनकी शंकाओंका समाधान करते हुए पण्डितजी भी घबरा जाते थे और उन्हें यह भय होता था कि इसको शिक्षा देना मुझसे कैसे बन पड़ेगा, कभी-कभी तो एकनाथकी ज्ञाननिष्ठा देखकर उन्हें यह भी भासित होता था कि शिष्यके रूपमें यह कोई सर्वज्ञ पुरुष सामने बैठा हुआ है। एकनाथके मार्मिक और हृदयको खोलनेवाले प्रश्न सुनकर कभी-कभी पण्डितजी एकनाथके दादा चक्रपाणिजीके पास जाकर यह भी कहते कि, 'मैंने तो पेटके लिये कथा बाँचना सीखा और यह लड़का ऐसे प्रश्न करता है कि उनका समाधान करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है।' इस प्रकार बारह वर्षकी अवस्थामें रामायण-महाभारत तथा अनेक पुराणोंकी रम्य कथाएँ तथा भागवतके ध्रुव-प्रह्लादादि बाल भागवतोंके आख्यान सुनकर एकनाथकी बुद्धिमें जो विलक्षण शक्ति उत्पन्न हुई वह बड़े-बड़े पण्डितोंके लिये भी अतर्क्य थी। सामान्य लोगोंको यह बात असम्भव-सी मालूम होती है। कारण, ऐसा बालक सहसा उनके कहीं देखनेमें नहीं आता। परंतु एकनाथका सारा चरित्र ही असामान्य होनेसे उसमें बचपनसे ही ऐसी सामान्य बातोंका होना ही सामान्य है। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। आँखोंमें दिव्य अंजनके लगते ही पातालमें गड़ा हुआ धन भी दिखायी देता है, उसी प्रकार सत्त्व-गुणाधिष्ठित पुरुषको सम्पूर्ण ज्ञान अनायास ही प्राप्त होता

है। श्रीमच्छंकराचार्यका वेदाध्ययन बारह वर्षमें पूर्ण हुआ, ज्ञानेश्वर महाराजने सोलहवें वर्षमें ज्ञानेश्वरी-जैसा अनुपम ग्रन्थ निर्माण किया, समर्थ रामदास स्वामीको बचपनमें वसिष्ठ-सा उग्र-वैराग्य प्राप्त हुआ, एकनाथकी यह बात भी ऐसी ही है। यह 'अनेक जन्मसंसिद्ध' थे। लौकिक गुरुसे प्राप्त हो सकनेवाली लौकिक विद्या पूर्वजन्माभ्यासके बलसे उन्हें सहज ही प्राप्त हो गयी। पर इससे उनका समाधान कैसे होता? उनका मन बेचैन हो उठा कि ध्रुव, प्रह्लादादिको जैसे नारद मिले वैसे भगवान्‌की प्राप्ति करा देनेवाले सद्‌गुरु मुझे कब मिलेंगे? खाने-पीनेसे भी उनकी रुचि हट गयी। ऐसे शिष्यके लिये सद्‌गुरु कहीं दूर थोड़े ही होते हैं? जैसे पके हुए फलमें चोंच मारनेके लिये तोता तैयार ही रहता है, वैसे ही सच्छिष्यके तैयार होते ही उसपर अनुग्रह करनेके लिये सद्‌गुरु भी तैयार ही रहते हैं। एक दिन रातको, तीसरा पहर बीत चुका था, एकनाथ अकेले शिवालयमें हरिगुण गाते हुए बैठे थे, सद्‌गुरुकी खोजमें लगे हुए हृदयमें उन्होंने यह आकाशवाणी सुनी—'देवगढ़पर जनार्दन पन्त नामक एक सत्पुरुष रहते हैं, उनके पास जाओ, वह तुम्हें कृतार्थ करेंगे। इस आकाशवाणीको सुनते ही घर-द्वार तथा वृद्ध दादा-दादीका कुछ भी खयाल न करके नाथ भगवान्‌का नाम लेकर वहाँसे चल पड़े और तीसरे दिन प्रातःकाल देवगढ़पर पहुँचे। वहाँ उन्हें जनार्दन पन्तके दर्शन हुए। गद्‌गद होकर उन्होंने अपना शरीर गुरुचरणोंमें अर्पण किया। शाके १४६७ (संवत् १६०२) के लगभग यह घटना हुई। गुरु-शिष्यका जिस दिन वह शुभ मिलन हुआ वह दिन धन्य है।

गुरु जनार्दनस्वामी

गुरु ही माता, गुरु ही पिता और गुरु ही हमारे कुलदेव हैं। महान् संकट पड़नेपर आगे और पीछे वही हमारी रक्षा करनेवाले हैं। यह काय, वाक् और मन उन्हींके चरणोंमें अर्पण है। एका जनार्दनकी शरणमें है। गुरु एक जनार्दन ही हैं।

—एकनाथ

जनार्दनस्वामी पहले चालीसगाँवके अधिवासी और वहाँके देशपाण्डे थे। यह श्रीआश्वलायन सूत्रके ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण थे। इनका जन्म शाके १४२६ फाल्गुन कृ० ६ को हुआ (संवत् १५६१ चैत्र कृ० ६) पूर्व-कर्म-ऋणानुबन्धसे इन्हें यवनराज्यकी नौकरी करनी पड़ी। इसमें इनकी पदवृद्धि भी बहुत हुई, आखिरको ये देवगढ़ या दौलताबादके बड़े हाकिम हुए, मुसलमान बादशाहके बड़े विश्वासपात्र सलाहकार भी हुए। बड़े वीर, दृढ़-स्वभाव, नियमी और तेजस्वी पुरुष थे। अपने काममें बड़े दक्ष होनेके कारण राज्यमें इनका बड़ा दबदबा था। तथापि इनका सबसे अधिक यश यही फैला हुआ था कि यह बड़े साधु पुरुष हैं और उस जमानेमें भी इनकी स्वधर्म-निष्ठाका डंका चारों ओर बज रहा था। यह गुरु दत्तात्रेयके उपासक थे और उपास्यदेवके सगुणस्वरूपका दर्शन इन्हें प्रत्यक्षमें होता था। ब्राह्ममुहूर्तमें उठनेके समयसे लेकर मध्याह्नतक यह स्नान-संध्या, समाधि और श्रीदत्त-सेवामें ही लगे रहते थे। मध्याह्नके बाद यह कचहरीका काम देखते थे। पुनः सायं-संध्या आदि करके रातको 'ज्ञानेश्वरी' और 'अमृतानुभव' का निरूपण करते थे। इनका समाधि लगानेका स्थान एकान्तमें था और ऐसा प्रबन्ध था कि उस ओर कोई जाने

नहीं पाता था। यह बड़े दयालु और न्यायनिष्ठ थे, सबपर इनकी वैसी ही धाक भी थी। इनके लिये, बादशाही हुक्मसे, प्रति गुरुवार (गुरु दत्तका दिन)-को देवगढ़की सब सरकारी कचहरियोंमें छुट्टी रहा करती थी। योगियोंके लिये भी जो सेवाधर्म अगम्य है, कहते हैं उसको निबाहते हुए यह स्वधर्मके आचरणसे जरा भी कभी च्युत नहीं हुए। प्रपंच और परमार्थ दोनों ही उत्तम रीतिसे चलाते थे। श्रीदत्तभगवान्‌के सगुण साक्षात्कारके प्रभावसे समता, शान्ति और अनासक्तिका इनमें अखण्ड निवास था। इनके शरीरसे विलक्षण तेज निकलता था। 'बाह्य कर्मोंद्वारा धुलकर स्वच्छ और अन्तर्ज्ञानसे उज्ज्वल हुए' इन भक्ति-ज्ञान-वैराग्यकी मूर्तिको हिन्दू-मुसलमान सभी वन्दनीय मानते थे। जनार्दन स्वामीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् दत्तात्रेय देवगढ़में विराजने लगे, इससे तथा वहाँ होनेवाले नित्य भजन-पूजन और आत्मचर्चाके दिव्य परिमलसे देवगढ़ और उसके आस-पासका क्षेत्र पुण्य-पावन और परम आह्लादप्रद हो गया।

श्रीदत्तभगवान्‌ने जनार्दनस्वामीपर अनुग्रह किया और उन्हें स्वरूपानुभव देकर कृतार्थ किया। उस प्रसंगका वर्णन स्वयं एकनाथ महाराज अपनी भागवत (अ० ९)-में सहज स्फूर्तिसे कर गये हैं। वह कहते हैं—'गुरुसे मिलनेकी महाराजको ऐसी अनन्य चिन्ता हुई कि सद्‌गुरुके चिन्तनमें वह तीनों अवस्थाएँ भूल गये। भगवान् भावके भूखे हैं। इनकी इस दृढ़ अवस्थाको जानकर श्रीदत्तभगवान् प्रकट हुए और इनके मस्तकपर उन्होंने हाथ रखा। हाथ रखते ही सम्पूर्ण बोध हो गया। इस मिथ्या प्रपंचका जो मूल स्वरूप है वह आत्मबोधसे ज्ञात हो गया। कर्म करके भी जो अकर्ता है उसीने 'अकर्तात्मबोध' करा दिया, देहमें रहकर भी

विदेहता कैसे होती है वह भी तत्त्वतः ज्ञात हो गया। गृहस्थाश्रमको छोड़े बिना, कर्मरेखाको लाँघे बिना, निज व्यापारमें लगे रहनेकी अवस्थामें जो बोध सर्वथा नहीं होता वह बोध मनको प्राप्त हो गया, मनका मनपन छूट गया, उस अवस्थाको सँभालना कठिन हो गया, जनार्दन महाराज मूर्छित हो गये। गुरु दत्तात्रेयने उन्हें तत्त्वतः चैतन्य किया और कहा, 'भक्त सत्त्वावस्थामें रहता है, उसे भी आत्मसात् करके निजबोधमें रहो।' पूजाविधि करके जब जनार्दन महाराज चरणोंपर गिरे तब गुरु दत्तात्रेय अपनी योगमायाके योगसे अदृश्य हो गये।'

श्रीदत्तात्रेयने चौबीस गुरु किये थे, इसी प्रसंगकी कथा विस्तारपूर्वक तीन अध्यायोंमें कहकर दत्तात्रेयकी शिष्य-परम्परा बतलाते हुए एकनाथ महाराज ऊपर दी हुई रहस्य-कथा कह गये हैं। इतने रहस्यकी बात सबसे कहनेयोग्य तो नहीं मालूम होती। कारण कलियुगमें श्रद्धाहीन तर्कवादियोंकी ही भरमार होनेसे ये लोग इसपर यह कहनेमें भी नहीं चुकेंगे कि एकनाथ महाराजने यह अच्छा परिहास किया। ऐसे ही लोगोंका स्मरण करके एकनाथ महाराजको पीछे यह खयाल हुआ कि गुरुके सम्बन्धमें यह रहस्य प्रकट करनेमें भूल हुई! तथापि 'दत्तात्रेय-शिष्य कथन करते हुए जनार्दनका स्मरण हुआ' और देहका ध्यान न रहनेसे सद्गुरु-प्रेमके आवेशमें सद्गुरुके चरित्रकी यह अत्यन्त महत्त्वकी बात भी कह गये। भक्तोंपर अवश्य ही उन्होंने यह बड़ा उपकार किया।

ऊपर एकनाथ महाराजने सद्गुरु-चरित्रके महत्त्वपूर्ण प्रसंगका जो वर्णन किया है उसका अब थोड़ा विचार करें। सबसे पहले हमें यह बात अच्छी तरहसे ध्यानमें रखनी चाहिये कि परमात्मापर पूर्ण निष्ठा रखकर तन्मय होनेवाले जीवके उद्धारके लिये परमात्मा

सगुणरूपसे प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। इतना बड़ा अधिकारी, सत्त्वसंशुद्ध जीव बिरला ही होता है, इसलिये ऐसी बातें भी जहाँ-तहाँ सबके देखनेमें नहीं आतीं; पर पापी जीवोंको जिस बातका अनुभव नहीं होता उसे वे भले ही मिथ्या कहें, किन्तु इससे वह बात मिथ्या नहीं होती। किसी भी शास्त्रके सिद्धान्त उस शास्त्रके जाननेवालोंके मुखसे ही जाने जा सकते हैं। रोगकी परीक्षा वैद्य, हीरेकी जौहरी और कुश्तीकी उस्ताद ही कर सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक शास्त्रका मर्मज्ञ अनुभवी ज्ञाता कम-से-कम अपने शास्त्रके सम्बन्धमें यदि प्रमाण माना जाता है, तब संसारके सब शास्त्र जिस अध्यात्मशास्त्रके पसंगेमें भी नहीं हैं, उसकी गूढ़ बातोंकी पहचान साधु-महात्माओंसे ही केवल पूछी जा सकती है, यह स्पष्ट है। सामान्य मनुष्य, विषयी-विलासी जीव या साधना करनेवाले साधक भी सिद्ध पुरुषोंके अनुभवकी ठीक कल्पना कैसे कर सकते हैं? इसलिये साधु-महात्माओंके चरित्रोंमें यदि कोई ऐसी बातें आ जायँ जिनकी कल्पना सामान्य मनुष्य नहीं कर सकते तो इतनेसे उन बातोंको मिथ्या कहकर उड़ा देनेका कोई दुस्साहस न करे। साधु बनकर साधुको देखे, भक्त होकर भक्तको जाने और ज्ञानी होकर ज्ञानीको पहचाने। जिसे इतना अधिकार न प्राप्त हुआ हो वह साधु-महात्माओंकी इन बातोंको मूर्खताभरी और मिथ्या कहनेके फेरमें न पड़े, इसीमें उसका हित है। सूर्यकी बदनामी करनेसे उसका प्रकाश थोड़े ही कम होता है? साधु-महात्मा सूर्यके समान हैं। उनकी वास्तविक योग्यता विषयोंके अन्धकारमें अपना प्रपंच रचनेवाले जुगुनू नहीं कर सकते। सगुण-साक्षात्कार अथवा संतोंके चरित्रोंमें देख पड़नेवाले अन्य चमत्कार मिथ्या नहीं हैं। भानुदास अथवा एकनाथ या ऐसे ही अन्य किसी भी स्वस्वरूपको प्राप्त

महात्माके चरित्रमें दिखायी देनेवाले ये चमत्कार कोई अद्‌भुत व्यापार नहीं हैं। प्रत्युत इन सब चरित्रोंको महात्माओंके अनुभवकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। भक्तोंको सगुण-साक्षात्कार होता है। जनार्दनस्वामीको श्रीदत्तभगवान्‌के दर्शन हुए, अनुग्रह हुआ और नित्य-दर्शन भी हुआ करते थे। जनार्दनस्वामीने एकनाथ महाराजको भी श्रीदत्तदर्शन करा दिये। एकनाथ महाराजके द्वारपर दासोपन्तने श्रीदत्तभगवान्‌को चोपदारके वेषमें देखा। एकनाथ महाराजके घरपर श्रीदत्तभगवान् बारह वर्षतक श्रीखण्डिया बनकर काम करते रहे। इन सब बातोंको हमलोग चमत्कार कहते हैं, श्रद्धालु लोग इन बातोंको सत्य समझते हैं, अज्ञानी लोग इन्हें मिथ्या मानते हैं। पर ये भक्तोंके अनुभवकी सत्य बातें हैं। अस्तु!

जनार्दनस्वामीके चरित्रके अत्यन्त महत्त्वके प्रसंगकी अर्थात् श्रीदत्तभगवान्‌के अनुग्रहकी साक्षी स्वयं जनार्दनस्वामीके शिष्यसे ही मिली है। यह बड़े आनन्दकी बात है। जब जनार्दन-स्वामीको सद्‌गुरु-प्राप्तिकी ऐसी धुन समायी कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें इसके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं था, तब भावभक्तिके भोक्ता भगवान् दत्तात्रेय साक्षात् प्रकट हुए और उनके सिरपर उन्होंने अपना हाथ रखा। भगवान्‌के हाथका स्पर्श होते ही स्वरूप-साक्षात्कार हो गया—'कर्म करके भी अकर्ता' अर्थात् अकर्तात्मबोध हुआ और इसी देहमें विदेहता प्रकट हो गयी। गृहस्थाश्रमको बिना छोड़े, कर्ममर्यादाको बिना लाँघे, अपना कर्म करते हुए आत्मानुसन्धान न छोड़नेका कौशल उन्हें प्राप्त हो गया और उसके साथ ही मनका मनस्त्व छूट जानेसे वह मूर्छित हो गये, तब श्रीदत्त-भगवान्‌ने उन्हें चैतन्य किया और सात्त्विकताका यह उफान

आत्मसात् करके परमानन्दके निजबोधसे सहजभावसे रहना सिखाया। अनन्तर श्रीदत्तभगवान्‌की पूजा करके जनार्दनस्वामी उनके चरणोंपर गिरे, इसी अवस्थामें भगवान् अपने योगमायाके बलसे अन्तर्धान हो गये। जनार्दनस्वामीको इस प्रकार जो भगवान्‌के प्रथम दर्शन हुए, उसका यह वर्णन उनके प्रधान शिष्यने किया है। 'गृहस्थाश्रमको बिना छोड़े, कर्मरेखाको बिना लाँघे' निजबोधसे रहनेका उपदेश श्रीदत्तभगवान्‌ने जनार्दन-स्वामीको किया और वही उपदेश उनसे एकनाथ महाराजको मिला। जनार्दनस्वामी अथवा एकनाथ महाराजको गृहस्थाश्रममें असंग होकर अर्थात् अकर्तात्मभावके साथ रहनेका जो उपदेश श्रीदत्तभगवान्‌ने किया उसे यदि हमलोग ध्यानमें रखकर वैसा अपना जीवन बनावें तो गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी भगवत्प्राप्ति होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं। अस्तु, जनार्दनस्वामी-जैसे पूर्ण पुरुषने देवगढ़से कुछ बीस ही मील दूर पैठणमें रहनेवाले हमारे बालभागवतको अपनी अचिन्त्य शक्तिसे अपनी ओर खींच लिया और उसपर कृपा करके उसे जगदुद्धार करनेमें समर्थ किया, यह बड़े आनन्दकी बात हुई।

जनार्दन पन्तके दर्शन जब पहले-पहल एकनाथको हुए तब दोनोंको ही बड़ा आनन्द हुआ। ध्रुवके समान विरक्त हुए एकनाथकी उस वामनमूर्तिको देखकर जनार्दनस्वामी बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हें बड़े प्रेमसे अपने पास रख लिया। गुरुका सदाचार, ब्रह्मनिष्ठा और प्रेमी हृदय देखकर एकनाथकी चित्तवृत्ति उनके चरणोंमें संलग्न हो गयी। एकनाथने लगातार छः वर्ष बड़े भावभक्तिसे जनार्दनस्वामीकी अपूर्व सेवा की और वह उनके अनुग्रहके पूर्ण पात्र हुए। एकनाथकी गुरुसेवाका ऐसा क्रम

था—गुरु सोकर उठें इससे पहले शिष्य जाग उठें। रातको गुरुके पैर दाबें, गुरुके सोनेपर उनके पायताने स्वयं सो रहें। दिन-रात, घर-द्वार सर्वत्र गुरुकी सेवामें तत्पर रहकर बड़े उत्साहसे, जो काम सामने आ जाय उसे आज्ञाकी बाट न जोहकर, कर डालें। भोजनके पश्चात् बड़े प्रेमसे पान लगावें और गुरुके हाथमें दें और गुरु विश्राम करने लेट जायँ तब पंखा झलें या अन्य प्रकारसे सेवा करें। गुरुकी विश्रान्तिमें ही अपनी विश्रान्तिका अवसर निकाल लें। गुरु स्नान करनेके लिये उठें तब उन्हें स्नानके लिये पात्रमें जल भर दें, धोती चुनकर हाथमें दें, पूजाकी सब सामग्री जुटा दें और पूजाके समय सदा सन्निध रहकर जब जो वस्तु आवश्यक हो, आगे कर दें। गुरु जब समाधि लगाते तब शिष्य द्वारपर खड़े रहकर बाहरकी सब उपाधियोंका निवारण करते। गुरु-गृहमें कई आश्रित, टहलुए और नौकर-चाकर थे, पर उनकी कोई राह न देखकर स्वयं ही बड़े प्रेम और उत्साहसे तन-मन लगाकर गुरुकी परिचर्या करते। ईश्वरसे यही प्रार्थना करते कि गुरु-सेवा करनेकी मुझे इतनी सामर्थ्य दें कि सब नौकर-चाकरोंका काम मैं अकेला ही कर सकूँ। वह अपनी भूख-प्यासकी सुध न रखकर गुरुकी भूख-प्यासका ही खयाल रखते। अपने आराम करने या सोनेका जरा भी खयाल न रखकर इसी बातमें दक्ष रहते कि गुरुकी निद्रामें जरा भी कोई बाधा न पड़े। अपना भोजन नियमित रखकर ऐसी चेष्टा करते कि गुरु यथेच्छ भोजन पावें। जरा भी अधिक भोजन होनेसे सुस्ती आ जायगी और इससे गुरु-सेवामें बाधा पड़ेगी, इसलिये युक्ताहार-विहार करते। गुरुका सन्तोष ही इनका सन्तोष था, गुरुके शबद ही इनका शास्त्र था, गुरुकी मूर्ति ही इनका परमेश्वर, गुरुका घर ही

इनका स्वर्ग, गुरुके आप्त ही इनके आप्त, यही नहीं, '**गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म**' यही इनकी भावना थी और इसी परम शुद्ध भावनासे यह गुरुकी अखण्ड सेवा करते थे। इन छः वर्षोंमें एकनाथको पैठणका स्मरण भी नहीं हुआ, यही क्यों, उन्हें अपनी देहका भी विस्मरण हो गया। गुरु-सेवाको ही उन्होंने परम धर्म माना और अवस्थात्रयमें गुरुके सिवा उन्होंने और किसी वस्तुका चिन्तन भी नहीं किया। गुरु-सेवा करते-करते एकनाथके सब मनोविकार शान्त हो गये, भूख-प्यास आदि प्राणधर्म छूट गये, राग, लोभादि रिपु शरीर छोड़कर चले गये, इन्द्रियाँ वासनारहित हो गयीं, काया तेजोमय हो गयी, अन्तःसमाधानका तेज रोम-रोमसे प्रकट होने लगा। गुरु-सेवासे एकनाथ देहाभिमानशून्य हो गये! इस प्रकार गुरु-सेवासे उनकी चित्तशुद्धि हुई और वह गुरुप्रसादको प्राप्त हुए। ऐसी शिष्यवृत्तिके साथ रहते हुए उन्होंने साक्षात् गुरुमुखसे ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव और श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थ सुने और उससे उनका आत्मबोध जागृत हो गया। केवल संसारके विषयोंमें पड़े हुए लोगोंको इस विषयमय संसारके सिवा और कुछ नहीं सूझता, उसी प्रकार उनके श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कारके लिये गुरुके सिवा और कोई विषय ही नहीं रह गया। जो अधकचरे पारमार्थिक हैं उनकी बड़ी दुर्दशा होती है। श्रवण वे परमार्थका करते हैं, मनन विषयोंका करते हैं, निदिध्यासन करते हैं प्रपंचका और साक्षात्कार होता है उन्हें केवल दुःखका। एकनाथ गुरु-सेवासे अपनेको धन्यभाग समझते थे। जो भक्त नहीं हैं उन्हें सेवामें बड़ा कष्ट मालूम हो सकता है, पर एकनाथ-जैसे गुरु-भक्तके लिये वही सेवा परमामृतदायिनी होनेसे उसीको उन्होंने अपना महद्

भाग्य समझा। उन्होंने स्वयं स्वलिखित भागवतमें गुरु और गुरु-भजनकी महिमा गायी है। कहा है कि, 'भव-सागरसे पार उतरनेके लिये मुख्य साधन गुरु-भजन ही है।' और गुरुका लक्षण क्या है? एकनाथ महाराज कहते हैं कि, 'सद्‌गुरु वही है जो आत्मस्वरूपका बोध कराकर समाधान करा दे।' लौकिक विद्याओंके लौकिक गुरु अनेक हैं, पर सद्‌गुरु वही है जो आत्मस्वरूपमें स्थित करा दे। महद् भाग्यसे ही ऐसे सद्‌गुरु प्राप्त होते हैं। और ऐसे सद्‌गुरुकी सेवा सत्-शिष्य भी कैसे करता है? एकनाथ महाराज वर्णन करते हैं—'गुरु ही माता, पिता, स्वामी और कुलदेवता हैं। गुरु-बिना और किसी देवताका स्मरण नहीं होता। शरीर, मन, वाणी और प्राणसे गुरुका ही अनन्य ध्यान हो यही गुरुभक्ति है। प्यास जलको भूल जाय, भूख मिष्टान्न भूल जाय और गुरु-चरण-संवाहन करते हुए निद्रा भी भूल जाय। मुखमें सद्‌गुरुका नाम हो, हृदयमें सद्‌गुरुका प्रेम हो, देहमें सद्‌गुरुका ही अहर्निश अविश्रान्त कर्म हो। गुरु-सेवामें ऐसा मन लगे कि स्त्री, पुत्र, धन भी भूल जाय, अपना मन भी भूल जाय, यह भी ध्यान न हो कि मैं कौन हूँ।'

गुरु ही भगवान्, गुरु ही परब्रह्म और गुरु-भजन ही भगवद्-भजन है। गुरु और भगवान् एक ही हैं; यही नहीं प्रत्युत 'गुरु-वाक्य ही ब्रह्मका प्रमाण है अन्यथा ब्रह्म केवल एक शब्द है।' गुरु-सेवाका मर्म एकनाथ महाराज एक दूसरे स्थानमें बतलाते हैं—'गुरुको आसन, भोजन, शयन कहीं भी न भूले। जिसको गुरु माना उसे जाग्रत् और स्वप्नके सारे निदिध्यासनमें गुरु माना। गुरु-स्मरण करते-करते भूख-प्यासका विस्मरण हो जाता है और देह एवं गेहका सुख भी भूल जाता है, उनके बदले सदा परमार्थ ही सम्मुख रहता है।'

सद्‌गुरुकी सामर्थ्य और सत्-सेवाका सुख कैसा है, इस विषयमें एकनाथ महाराजके ये प्रेमभरे उद्‌गार हैं—

'सद्‌गुरु जहाँ वास करते हैं वहीं सुखकी सृष्टि होती है। वह जहाँ रहते हैं वहीं महाबोध स्वानन्दसे रहता है। उन सद्‌गुरुके चरण-दर्शन होनेसे उसी क्षण भूख-प्यास भूल जाती है। फिर और कोई कल्पना ही नहीं उठती। अपना वास्तविक सुख गुरु-चरणोंमें ही है।'

गुरु-सेवाके सम्बन्धमें नाथ फिर अपना अनुभव बतलाते हैं—

'सेवामें ऐसी प्रीति हो गयी कि उससे आधी घड़ी भी अवकाश नहीं मिलता। सेवामें आलस्य तो रह ही नहीं गया; क्योंकि इस सेवासे विश्रान्तिका स्थान ही चला गया। प्यास जल भूल गयी, भूख मिष्टान्न भूल गयी। जँभाई लेनेकी भी फुरसत न रह गयी। सेवामें मन ऐसे रम गया कि एका जनार्दनकी शरणमें ही लीन हो गया।'

एक दिन जनार्दनस्वामी समाधि लगाये हुए थे और एकनाथ द्वारपर अकेले ही बैठे गुरुका ध्यान कर रहे थे। आसन, शयन, भोजन और चलते-फिरते सर्वत्र गुरुका ही ध्यान करना, यही उनका नित्यका अभ्यास था। एक प्रसंगमें उन्होंने कहा है—

'चिन्तनसे चिन्ता नष्ट होती है। चिन्तनसे सब काम हाथमें आ जाता है। चिन्तनसे सायुज्य-मुक्ति आप ही आ जाती है, उसके लिये भटकना नहीं पड़ता। चिन्तनकी ऐसी महिमा है। इससे अधम खलजन भी तर गये हैं। चिन्तनसे प्राणिमात्रका समाधान होता है। चिन्तनसे आधि-व्याधि नष्ट होती और उपाधि छूट जाती है। चिन्तनसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। (इसलिये) एका सदा जनार्दनके चरणोंमें रहता है।'

द्रौपदीने चिन्तन किया और भक्त-सखा दौड़े आये, एक क्षणमें उन्होंने दुर्वासा और उनकी मुनिमण्डलीको तृप्त किया, सतत चिन्तन करनेवाले अर्जुनके रथपर वह सारथी होकर बैठे, चिन्तनसे ही जल-थलमें सर्वत्र प्रह्लादको भगवान्का सहारा मिला, चरणोंका चिन्तन करनेवाले दामाजीके लिये वह महार बने और मेरे परदादाके लिये भी उन्होंने समय-समयपर कितने वेश धारण किये। वही सर्वगत, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वसाक्षी परमात्मा जनार्दनस्वामीके रूपमें प्रकट हुए हैं, इसी दृढ़ भावनाको धारण करके एकनाथने गुरुकी मानसपूजा की और गुरुपूजा करते ही अहंभाव भूलकर वह गुरु-स्वरूपमें मिल गये। उस प्रसंगका उन्होंने वर्णन किया है—

'मेरा मनोभाव जानकर सद्गुरुराजने सगुण रूपका बोझ उठा लिया और अतिथि बनकर आये। पहले अन्तःकरणको—चित्त और मनको अत्यन्त शुद्ध करके वही आसन स्वामीको बैठनेके लिये दिया, फिर प्रीतिके जलसे उनके चरणकमल धोये, वासनाका चन्दन लगाया, अहंभावका धूप किया, सद्भावका दीप जलाया और पंचप्राणोंका नैवेद्य निवेदन किया, रज और तमको छोड़ सत्त्वगुणका ताम्बूल दिया। स्वानुभवके रंगमें रँगकर वही रंग छिड़का। एकाने जनार्दनकी पूजा की और भगवान् तथा भक्तमें कोई भेद न रहा। एका सद्गुरुराज ही होकर रहा।'

इस प्रकार सद्गुरु और परमात्माको एक-दूसरेसे अभिन्न जानकर एकनाथने परम निष्ठासे छः वर्ष गुरु-सेवा की और यह सेवा करते-करते अपना पृथक् अस्तित्व ही भुला दिया। एकनाथका यह अधिकार देखकर जनार्दनस्वामीने उन्हें श्रीदत्त-भगवान्का दर्शन करानेका संकल्प किया। पर उस मनोहर

प्रसंगका वर्णन करनेके पूर्व दो आख्यायिकाएँ यहाँ लिखते हैं।

एक समयकी घटना है कि किसी गुरुवारको जनार्दन स्वामी समाधिमें निमग्न थे और देवगढ़पर अकस्मात् बाहरी शत्रुका आक्रमण हुआ। बड़ा आतंक फैला। सेवकजन इसकी खबर देनेके लिये जनार्दनस्वामीके पास जा रहे थे। समाधिस्थानके द्वारपर एकनाथको उन्होंने गुरु-चिन्तन करते हुए बैठे देखा। एकनाथ इन सेवकजनोंसे हाल सुनकर तुरंत खड़े हुए, युद्धके समय जो पोशाक उनके गुरु जनार्दनस्वामी पहना करते थे, वह पोशाक उन्होंने चढ़ा ली और अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो, कमरमें तलवार लटकाकर और घोड़ेपर सवार हो वह बाहर निकले। स्वामीकी समाधि न टूटे और उनका कार्य भी उत्तम रीतिसे हो जाय इसलिये एकनाथने यह ढंग निकाला। रणके बाजे बजने लगे। शस्त्रोंकी खनखनाहट सुनायी देने लगी और चार घंटे घोर संग्राम होनेके बाद शत्रु हारकर और मार खाकर, अयश लेकर भागे। इस अवसरपर जनार्दन-वेशधारी एकनाथने वीरताकी ऐसी पराकाष्ठा की कि लोग चकित होकर देखते ही रह गये। गढ़पर जहाँ-तहाँ जनार्दनस्वामीकी स्तुति होने लगी। उसे सुनकर गुरु-शिष्यका अन्तर्बाह्य अभेद प्रत्यक्ष कृतिसे दिखानेवाले एकनाथ बहुत ही प्रसन्न हुए। गुरुकी पोशाक उतारकर जहाँ-की-तहाँ रख दी और फिर चुपचाप अपने काममें लगे। समाधिसे व्युत्थान होनेपर जनार्दनस्वामी अपने घर आये और भोजनके लिये बैठे। घरमें और गढ़पर उन्हें बड़ी चहल-पहल-सी मालूम हुई। एकनाथ सदाकी भाँति विनयपूर्वक गुरुके सम्मुख खड़े ही थे। पर जो काण्ड हुआ था उसके बारेमें एक शब्द भी उन्होंने नहीं कहा। उनमें कर्तापनका कोई अहंभाव ही नहीं था। इस समय उनकी यह बात प्रकट हो गयी। चार घण्टे लड़कर

शत्रुसेनाका संहार करनेवाला यह वैष्णव वीर गुरुके समीप अपने पराक्रमका बखान न करके; उस पराक्रम या उस घटनाको ही सर्वथा भूलकर गुरुके सामने विनयसे खड़ा है, इस दृश्यका चित्र यदि कोई कुशल चित्रकार खींचे तो वह हिन्दूमात्रको मोहित करेगा। जनार्दनस्वामीको जब सब हाल मालूम हुआ तो उन्हें अपने इस महान् शिष्यके प्रति जो धन्य स्नेह हुआ उसे लेखनी क्या व्यक्त कर सकती है? अपने पृथक् अस्तित्वका अभिमान सर्वथा लुप्त करके निरहंकार होकर गुरु-सेवा करनेवाले ऐसे शिष्य अत्यन्त दुर्लभ हैं।

एकनाथकी एकाग्रता बड़ी ही विलक्षण थी। श्रीगुरुचरणोंका ध्यान करते-करते उनका देह-भाव भी नष्ट हो जाता था। परमार्थ-साधनमें जिसका चित्त इतना लय हो जाता है, उसका प्रपंच-साधन भी ठीक तरहसे ही होता है। साधु-सन्तोंके व्यवहारमें भी कभी प्रमाद नहीं होता। कोई भी काम हो उसे जितना बेभूल साधु-सन्त कर सकते हैं, उतना प्रापंचिक जन नहीं कर सकते। सन्त व्यवहारज्ञ और व्यवहारकुशल होते ही हैं, केवल व्यवहारको ही सार समझनेवाले लोग व्यवहारमें भी भूल करते हैं, वे परमार्थसे तो गिरे ही रहते हैं। एकनाथकी श्रद्धा, प्रेम और विश्वास देखकर जनार्दनस्वामीने उन्हें हिसाब-किताबका काम सौंपा। गुरु-सेवामें कोई भी त्रुटि न करके एकनाथ इस कामको भी गुरु-सेवा समझकर ही बड़े ध्यानसे करते थे। एक दिन हिसाबमें एक पाईका हिसाब नहीं मिलता था, इस भूलको ढूँढ़ निकालनेके लिये, अन्य सेवा-कार्यसे निवृत्त होनेपर, वह हिसाब लेकर रोशनीके सामने बैठ गये। ढाई पहर रात बीत गयी, फिर भी हिसाब नहीं मिला। शरीर थका, पर उस थकावटको उन्होंने कुछ नहीं समझा, एक क्षणके लिये भी उन्होंने अँगड़ाईतक

नहीं ली, भोजनोत्तर जल पीनेसे निद्रा, आलस्य आ जायगा इसलिये जल भी नहीं पीया, इस प्रकार जो काम उन्होंने हाथमें लिया था, उसे उत्तम रीतिसे पूरा करनेमें उन्होंने कोई भी त्रुटि नहीं की। काम छोटा हो या बड़ा, उसकी जिम्मेदारी जब सिरपर ली है या आ पड़ी है तब उसे स्वधर्म समझकर अत्यन्त श्रद्धाके साथ करना चाहिये, यही श्रेष्ठ पुरुषोंका मनःस्वभाव होता है। कर्तव्यके लिये ही कर्तव्य करना महान् पुरुषोंका शील है। इसी शीलके अनुसार एकनाथ एक पाईकी भूल ढूँढ़ निकालनेमें इस प्रकार लगे हुए थे। तीन पहर रात बीती तब जनार्दनस्वामी जागे और एकनाथ आस-पास कहीं दिखायी नहीं दिये, इसलिये वह पासके कमरेमें झाँकने लगे। कुछ देरमें एकनाथने पाईकी भूल ढूँढ़ निकाली। हिसाब मिला देखते ही उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ और उसी हर्षमें उन्होंने एक बार ताली बजायी। जनार्दनस्वामीको बड़ा कुतूहल हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने पूछा, 'यह हर्ष किस बातका हो रहा है?' एकनाथने सारी बात कह दी। तब जनार्दनस्वामी बोले, 'नाथ! एक पाईकी भूलका पता लगते ही जब तुम्हें इतना आनन्द हो रहा है तब संसारकी जो बड़ी भूल तुम्हारे हाथों हुई है उसका पता लगनेसे भला बताओ तो तुम्हें कितना अधिक आनन्द होगा? तात! ऐसा ही लय यदि श्रीदत्त-चिन्तनमें कर दो तो भगवान् क्या कहीं दूर हैं?' एकनाथको रोमांच हो आया। उन्हें यह आशा बँध गयी कि अब गुरुमहाराज भगवान्के दर्शन करा देंगे। इसी आशासे उत्कण्ठित होकर वह गुरुचरणोंमें लोट गये।

श्रीदत्तकृपा और अनुष्ठान

एका (एकनाथ)-ने जनार्दनकी शरणमें जाकर, आत्मदृष्टि पाकर परब्रह्ममूर्ति भगवान् दत्तको इन आँखोंसे देखा।

—एकनाथ

जनार्दनस्वामीका समाधि लगानेका स्थान देवगढ़पर उत्तर दिशामें निरालेमें था। उस स्थानके सामने एक सुरम्य सरोवर था, जिसके चारों ओर फल-पुष्पोंसे शोभायमान नाना प्रकारके वृक्ष थे। उस ओर जानेका किसीको हुक्म नहीं था। वहाँ मनुष्योंके पैरोंकी आहट भी कभी सुनायी नहीं देती थी। वह रमणीय निर्जन स्थान समाधिके ही सर्वथा उपयुक्त था। उस शुचि प्रदेशमें स्थिर आसन लगाकर जनार्दनस्वामी नित्य एक पहर समाधिका आनन्द लेते थे। गुरुवारका तो सारा दिन ही वहीं बीतता था। वहाँ एकनाथको गुरुके दर्शन और सम्भाषणका लाभ हुआ करता था। स्वामीकी एक बार इच्छा हुई कि एकनाथको भी श्रीदत्तदर्शनका लाभ हो। उन्होंने एकनाथको पहलेसे यह समझा रखा कि 'यहाँ श्रीदत्तभगवान्के सिवा और कोई भी नहीं आता और भगवान् चाहे जिस भेषमें आयें उन्हें देखकर तुम घबराना नहीं।' एकनाथ इस तरह श्रीदत्तभगवान्की बाट जोहते बैठे रहे। स्वामी पूजा कर चुके तब श्रीदत्त मलंग (फकीर)-के भेषमें प्रकट हुए। उनका सर्वांग चमड़ेसे ढका हुआ था, साथ कुतियाके रूपमें कामधेनु थी, नेत्र लाल-लाल थे। यह भयानक रूप देखकर एकनाथ कुछ चकित हुए। जनार्दनस्वामी और श्रीदत्त आत्मसुखकी बातें करने लगे। पीछे श्रीदत्तकी आज्ञासे जनार्दनस्वामीने उस कामधेनुको दुहकर दूध निकाला और मिट्टीके एक पात्रमें दोनोंने यथेष्ट

भोजन करके अपनी अभिन्नता एकनाथको दिखा दी। भोजनके पश्चात् वह पात्र धोनेके लिये स्वामीने एकनाथके हाथमें दिया। एकनाथने जलसे उसको धोया, धोकर वही धोवन 'यही प्रसाद है, यही भागीरथी है, यही स्वानन्दवासका साधन है' कहकर बड़ी भक्तिके साथ प्राशन किया। यह जानकर श्रीदत्तने एकनाथको पास बुलाया। इसे परम प्राप्तिका समय जानकर एकनाथने दोनोंके चरणोंके सामने साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। उन्होंने देखा, गुरु ही तो परमगुरु हैं और परमगुरु ही गुरु हैं। इस अभेद-भावनासे क्षणकाल वह तटस्थ रहे। पीछे अपनी वृत्तिपर आये तब श्रीदत्तने उनकी ओर प्रसन्न बदनसे देखा और फिर जनार्दनस्वामीकी ओर देखकर कहा—'यह महाभागवत उत्पन्न हुआ है। इसके द्वारा भागवत-धर्मका प्रचार होगा। सहस्रों मनुष्योंको यह भक्ति-पन्थमें लगा देगा और जड-जीवोद्धार करनेवाले उत्तम ग्रन्थ भी निर्माण करेगा। भागवतपर इसका ग्रन्थ अपूर्व होगा।' यह कहकर श्रीदत्तने एकनाथका आलिंगन किया। तब जनार्दनस्वामीको परमानन्द हुआ और 'दत्त-जनार्दन-एकनाथ' तीनों समरस हो गये। एकनाथको जब श्रीदत्तने अपने रूपका दर्शन कराया तब दत्त, जनार्दन तथा अपने सहित सकल विश्व उन्होंने अभेदरूपसे देखा। उस प्रसंगका वर्णन करते हुए एकनाथ महाराज कहते हैं—'उसी एकका गुणगान करता हूँ, उसी एकका ध्यान करता हूँ, उसीको अगुणी देखता हूँ, उसीको सगुणी देखता हूँ और उसीको गुणातीत देखता हूँ।'

इसके अनन्तर श्रीदत्त अन्तर्धान हुए और जनार्दनस्वामी अपने कामपर गये। एकनाथको श्रीदत्त-दर्शनका परम आनन्द हुआ। जिस सगुण रूपको अपनी आँखों देखा वही अ—त्रि